

शरवध्वनि

शंखध्वनि

सुमित्रानदन पत



राजकमल प्रकाशन

पटना ६

दिल्ली-६

प्रवागत्र
राजवमठ प्रवागन प्रा० त्रि०
त्रियागज त्रिली ६

●

वापाराइट
सुमिप्रातन पत

●

प्रथम मन्वरण
१०३१

●

मद्र
सम्पन्न मद्रगात्रय
प्रयाग

●

जावरण
त्रिगामा इन्द्रिया त्रिग्या *

मूल्य १५ ०० रु०

मित्रवर
ई० चेलिशेव को
सरनेह

भूमिका

शम्भुध्वनि के अन्तगत मेरी इधर की नवीन रचनाएँ सगहीत है। इन रचनाओं में मुग्यन नय जागरण के स्वरा को तथा विश्व जीवन के भीतर उत्पन्न हो रहे नये मनुष्यत्व की रूपरेखाओं को अभिव्यक्ति मिली है। कुछ रचनाओं में वर्तमान युग जीवन की विसंगतियों के प्रति मर मन की प्रतिक्रियाएँ तथा कुछ में मर व्यक्तिगत सुख दुःख की अनुभूति का भी वाणी मिली है।

यह संग्रह मैंने मिशनर ई० चेल्लिगेव का समर्पित किया है। अपनी पुस्तक सुमित्रानन्दन पत्र—तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परंपरा और नवीनता में उन्होंने मेरे काव्य का जिस आंतरिक सहानुभूति के साथ गभीर आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया है उसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। हिन्दी के प्रगतिशील आलोचकों की तुलना में उनकी दृष्टि अधिक व्यापक गभीर तथा सारग्राही पाई जाती है। उन्होंने भारतीय जीवन सघन के मर्म में प्रगतिशीलता को जिस रूप में परिभाषित किया है और विशेषी होने पर भी भारतीय जागरण के जाहान को जिस प्रकार समझने की चेष्टा की है वह उनकी अतदृष्टि तथा प्रतिभा का परिचायक है। यदि वे मेरी नवीन चेतनामूलक सांस्कृतिक रचनाओं का—जिन्हें आध्यात्मिक रचनाएँ भी कहा जाता है—यथाचित मूल्यांकन नहीं कर सके तो मैं इस उनकी सीमा न कहकर मार्क्सवाद ही की सीमा बूझूंगा, जिससे उनका मूल्यांकन एवं विचारार्थक दृष्टिकोण अनुप्राणित रहा है, एवं जिस वातावरण में उनका जीवन तथा मन का निर्माण हुआ है।

मार्क्सवाद में चेतना तथा पदार्थ जयवा जातर तथा वस्तुगत दृष्टिकोण का संबंध बही से एक प्रकार का उल्लासक पता हो जाता है जहां से मार्क्स हासिल के सिद्ध करके उनके दान का परा के बल खड़ा करना चाहत है। इससे तब का परिणामी आत्मवाद—जा हासिल में गिन्तर पर पहुँचा मिलता है—मझे ही परा के बल खड़ा हो मरा हा पर भारतीय चेतनामूलक दृष्टिकोण में—जा पन्था पृथ्वी के अनुप सदैव ही परा के बल खड़ा रहा है—काद सदातिक या व्यावहारिक अंतर उपस्थित नहीं जाना। भारत में जावन वाद्य तथा नतिक सामूहिक मायताओं परिस्थितियों के अधीन न रह कर खड़ा है उनमें ऊपर आत्मवाद की व्यापक दृष्टि से अनुप्राणित रही हैं। भारतीय संस्कृति में जीवन मूल्य का वह व्यक्तिगत हा या सामाजिक मानवाय मूल्य के जाधिन रह हैं और वे मानवाय मूल्य निरंतर आध्यात्मिक आंतर मूल्य पर आश्रित रह हैं।

मूल्य संबंधी इन जटिल एवं गूढ़ समस्याओं का नया के जागर पर मुझे माने

की धरणा करता व्यय है। आगामी कुछ सारा व भीतर विरत जीवन जा गिना ग्रहण करगा उमरी धरारिण जनुमि ही मूल्य मरधी न्य भाति वा विगकरण कर मग्नी। इस युग वा मूल्यांत-मपय विगण व गिण भी जात दृष्टिया म निर्धारित हागा। तभी भरी रचाराभा म न्य चानात्मा मपय व पत् पित्तु। रा मूयातन भा ममय हा मरगा। य मर मुग इमगिए गिगना पत् रहा है वि माग्मवागी दृष्टिगण पत् आधागि जागारा वा मगी पिछठ तीन चार दारा वा रचाराभा म विगय मरध रग है। न्य मरय म उमग की मूमिता म भी मै विगनार म अपा विगार प्रमनुन कर ररा हें।

माग्मवाग् वरठ मनुप्य व एतिहासिग विगार वा ही उमरा मपूण विरास मानता है और उतम भी उमर एतिहासिग मानिग विगार वा जिम पर उता अनुसाग मानवीय गागाजिग एव गागृतिग मरघा की श्रणी निमर रहती है। भरी दृष्टि म एतिहासिग विगार जयन मत्तपूण एव इस मग रा प्रमुग मचरण हा पर भी मनुप्य व ममतिग तथा गणिवाचर विगार ही वा चातर है। सर्वागीण मानवीय मल्या व विरास व गिण जय प्रकार के उतन हा मत्तपूण उध्व-दृष्टि उच्च मचरण भा आवश्यक है।

जिम प्रकार मध्ययगीन भारतीय अध्यात्म जीवन व अय स्तरा की उपेधा वर, आयातिमर विगार वा ही मानय विगार वा सर्वोपरि लय मानता रहा उमी प्रकार एतिहासिग भातिववात् सामूहिक भौतिग उग्रयन वा ही मानव विगार वा चरम लक्ष्य मानता है। भले ही भौतिक समृद्धि की जावश्यकता इस वचानिग मग म विगासा-मग्य देशा के गिए गीण नहा समशी जा सरती हो पर है यह एकागी दृष्टि ही। मध्ययुगा के चिन्ताका न एतिहासिग मचरण एव एतिहासिग कम की उपेक्षा वर विचारा भावा का दृद्रियो से आत्मा को देह स तथा आध्यात्मिकता को भौतिकता स वियुक्त कर दिया था वतमान युग भी भातिवता को अध्यात्म से इद्रिय जीवन वा जातर मूल्या स तथा देह को आत्मा या पन्थ को चेतना स विच्छिन्न करने वा प्रयत्न करता है। मूत्यगत लारनिक दृष्टिया की वम एनागिना वा समाधान केवल तकवुद्धि के बल पर नहीं किया जा सरता के बाल की कसौती म कभी जाने पर ही समग्र रूप स परखी जा सरती हैं।

यह निविवाद है कि वचानिक उपलधिवा के इस युग म जन समूह के एतिहासिग विगार तथा एतिहासिग कम का मिद्वान अत्यरिन महत्व सरता है। कयाकि इतिहास ही मनुप्य वा निर्माता नहीं (हीगल) जीवित शिक्षित जन-ममाज भी इतिहास वा निर्माता है (भाक्स)। शिष्यक वा शिषित तथा शिषित वा शिष्यक बनना होता है। इस दृष्टि स क्राति वा भी इस युग म अपना महत्व है।

किन्तु विश्व सम्म्यता तथा विश्व जीवन जब जिम भाट पर पहुँच रह ह उमम मानवीय विनास के लिए नोना गुणात्मक तथा रागिवाचक व्यक्तित्व तथा सामूहिक दृष्टिया की भिन्न अनिवाय प्रदान हाती है जा दृष्टिया अभी अध मर्य ही का बाना पहने हुइ ह।

भारतीय जनदृष्टि अथवा जापनिपदिन दृष्टि हीगल के आत्मवाद—जा पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन का गिराव है और जा इतिहास की भी एक प्रकार स उपेक्षा नहीं करता—तथा मार्क्स के भौतिकवाद एवं इतिहास सगयी दृष्टिकोण—दाना को ही अतिशय कर मनष्यत्व का पूणता एवं मनुष्य समाज के सर्वांगीण विकास के लिए सर्वाधि के उच्चतर अतिरिक्षा के सूक्ष्मतम एक्कियों की आर भी ध्यान आर्कषित करती है जहाँ निमी प्रकार की एकागिता के लिए स्थान नहीं रहता आर जा सपूण मानव जीवन के विकास का लक्ष्य है। आज की गल्लावली म, मनुष्य अतन न पूजीवादी व्यक्ति की द्वाइ है न ऐतिहासिक भौतिकवादी समूह की द्वाइ। वह उस पूण चैतय की द्वाइ है व्यक्ति आर समाज तथा उन दोना का विकास जिसक अविच्छिन्न अंग ह। मनुष्य-जीवन मवधी ऐमे सर्वांगीण तात्त्विक सत्या को वूर्वा विचार के साथ प्रतित्रियावादी बूडे की गकरी म डालने का प्रयत्न कर हम उनके प्रति क्वच अपन अज्ञान हा का प्रदान करत हैं।

मुये पश्चिम क उन जाधुनिकतम दार्शनिक का चिन्तन-दान भी जधरा प्रतीत हाता है जिन्हान ऐतिहासिक कम की महत्ता को मुला टिया है और जिम पाजाटिविस्टम स्टक्च्युरलिस्टस ग्वीजनिस्टम स्वजिस्टनगियलिस्टस आदि रूडाटफ स्टमटर स प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप म प्रभावित, ममी प्रकार के मध्यवर्गीय विचारक तथा बौद्धिक सम्मिन्ति ह। ऐतिहासिक विकास कम अत्यत आवश्यक है पर ऐतिहासिक सचरण ही का मानन विकास के समग्र समय का दपण नहीं माना जा सकता वह क्वच मानव विकास क लिए सामूहिक पीठिया मर प्रस्तुत करता है।

भारतीय चतय सबधी दृष्टिकोण अभी जलना ही है वह अभी पश्चिमी सम्म्यता तथा बचानिक युग की उसीटी म नहीं कसा जा सका है। अभी तो हीगल के जादश वाद तथा मार्क्स-एंगिल्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का ही युग क जीवन तथा विचार जगत म सधप चल रहा है। अब ससार के देश जब परस्पर निकट आन एवं एक पूण मयाजित विश्व जीवन तथा मानव ससृति का निर्माण करन का प्रयत्न कर रह हैं और भौतिकवाद अपनी जति स्पधा क कारण ध्वसात्मक तथा अनियात्रिकता क कारण सहज मानवाय विकास का बाधन बनता जा रहा है, भारतीय चतय सगधा मार्गलिक दृष्टि निरट भविष्य म बूजन हिताय बहुजन मुखाय, विश्व जीवन म

अवतरित हानर उसका अज्ञाय एव जमिन्न अग वन राखी। आज क मयनर विन्व विनागर ध्वसात्र दगा मभावना की जार इगिन वरन हैं। मत्य अहिंसा के प्रतीन मया का उत्य भी जा मविष्य म विन्व जीवन क म्तर पर मायकता प्राप्त कर सकेया—इगी की सपुष्टि करता है।

मिन्नवर चरित्रात्र का मरा रचनाआ म अभिनयन आत्मा आर यथाथ का ममवय अमभव प्रतीत होता है। पर मी दगना हूँ कि आज क महान मत्रानि क युग म विन्व जीवन धीर धीरे मगा महन मयाजन की जार अग्रमर हा रहा है आगामी दगाका म यह प्रवृत्ति जीर भी स्पष्ट हा जाएगी। वस भारतीय दष्टि म यह समवय काई नयी वस्तु नही है। समी महान विचारर आर कवि विमिन्न युगा म इम प्रकार क साम्वृतिन समन्वय की आर प्ररित हृण है। तुन्सा ओर वबीर क यग भी इमी क उदाहरण है। आदग और यथाथ एक हा सत्य के दा पण एक हा मुद्रा क दा मुख है। जिस प्रकार कली स्वभावत पून म विवसिन हानी है उसी प्रकार यथाथ का जाल्म म परिणत हाना हाता है। जा सबध एक प्रवुद्ध सतुलित समाज म वतमान का मत्रिष्य से हाता है वही यथाथ का आदग स भी है। ऐतिहासिक यथाथ का सचरण भी जा जीवित दीक्षिन ब्यक्तिया द्वारा सचा लित हाता है लयामुख जयवा आदर्गोंमुग ही होता है।

फिर भी डा० चेरिगव की पुस्ता म सब मिलाकर मेरी रचनाआ को सम वने म पाठका का जधिव सहायता मिलेगी। हमारे प्रगतिशील आलोचको को मरी रचनाआ का समस्त भावल्मन जो कवल प्रतिप्रियात्मक ही लिखाई देता है उसका बहुत बडा भाग मि० चेलिसेन का भारतीय जीवन सघप के सदम म प्रगति शील प्रतीत होता है। मरा भाव ल्मन माक्सवाल् का खडन न कर उमकी पूति कर्ना है और मर काव्य म उस पूति का रूप मरी चेतनात्मक रचनाआ म मिलता है। इन रचनाआ क सबध म चेरिगव क दष्टिकाण की दुहाई देकर हिन्पी के कुछ प्रगतिशील ताता पडिता न उनके प्रतिक्रियात्मक हान की दुदुभी नए सिर स पाटना शुम् कर दी है। त्रमासिक जालाचना क १३वें अक म लेनिन जम शती का एन आलाचनात्मक उपहार शीपक लख इमका एक उदाहरण हं।

यद्यपि प्रस्तुत सग्रह की रचनाआ का चलिशव की पुस्तक से काई साधा सबध नही है फिर भी उनके दष्टिकोण के सबध म अपन विचार प्रकट कर उनकी व्यापक सवल्मनापूण दष्टि क टिए उह घयवाल् नेना म अपना कतय समझना हं।

सूची



	पृ०		प०
१ वह अनगट पापाण	९	१९ भारत भ	३७
२ १९७१	१०	२० पूण क्षण	३८
३ दवायान	११	२१ कवि घम	३९
४ सत्राति	१३	२२ मत्रमण	४१
५ चाद	१४	२३ दुग रमणी	४३
६ अनि यात्रिकता	१५	२४ वस्तु बोत्र	४४
७ सष्टि तत्र	१७	२५ विक्राम क्रम	४५
८ न्यिन प्रन	१९	२६ गटी का धाडा	४७
९ हनमत्	२०	२७ जमीप्ता	४९
१० पवित्रता	२२	२८ अनुपमा	५०
११ कला का सायकता	२४	२९ स्तुति क प्रति	५३
१२ दोप्त भावना	२६	३० पावन अवाधना	५५
१३ शिगु और जगत्	२७	३१ यथाय और आदग	५६
१४ ऊहापाह	२८	३२ मरा जग	५८
१५ भूग	२९	३३ मुत्तर	६१
१६ दुम क्षण	३३	३४ सक्त	६४
१७ गगनाद	३८	३५ प्रम	६६
१८ धूप वा टवडा	३६	३६ मन का साथ	७०

३७ युग गाथा	५०		
३८ जावन मुक्त	७२	६८ माण्य रणा	५०
२९ मध्य स्थिति	७४	६९ समुक्त	१३२
४० फूट फट	७६	७० जात्म माह	१३४
४१ अतजग	७८	७१ मरी बीणा	१३६
४२ मृत्यु	८०	७२ मुपण	१३९
४३ यत्र नगर	८१	७३ नव घतन	१४१
४४ चिटिया की समा	८३	७४ जात्म क्या	१४२
४५ भाव सिद्धि	८५	७५ जानन बाध	१४५
४६ पत्थर म फट	८७	७६ गग घ्वनि	१४७
४७ समाधान	८९	७७ श्रानि युग	१४९
४८ पत्तडियाँ	९२	७८ भारत नू	१५१
४९ एव सत	९३	७९ राजू	१५३
५० जात्म घुनी	९५	८० सफट	१५५
५१ जतर्यात्रा	९६	८१ मनोभाव	१५९
५२ आत्म परिचय	९९	८२ प्यार	१६०
५३ आत्म दप	१०१	८३ सगुन्न	१६१
५४ विद्युत युग	१०२	८४ यक्ति चतना	१६२
५५ स्त्री	१०४	८५ साधवता	१६४
५६ अपित जीवन	१०७	८६ निर्घोष	१६५
५७ जीवन उरलास	१०९	८७ पुरस्कार	१६७
५८ सजन दायित्व	१११	८८ मायाजाल	१६९
५९ भविष्यवाणा	११२	८९ पूण बाध	१७०
६० मधु पत्तडिया	११४	९० अतपति	१७१
६१ सूय बाध	११६	९१ पूण समपण	१७२
६२ सूत्र बाध	११८	९२ अविच्छिन्न	१७३
६३ जयनाद	११९	९३ वक्तव्य	१७४
६४ नम्र	१२१	९४ मनोव्यथा	१७५
६५ आका ता	१२२	९५ प्रतित्रिया	१७६
६६ प्रतीक	१२५	९६ नियतनाम	१७८
६७ कश्मीर	१२७	९७ लेनिन क प्रति	१८१
	१२९		१८३
	१६१		

वह अनगढ़ पापाण गड था—

मने तपकर, खँटकर,
भीतर कही मिमट कर,

उसका रूप निखारा,
तद्वत् भाव उतारा,
शशिमुख का
सौंदर्य सँजारा ।

जोग उसे
निज मुख बतलाते,
देख देख कर नहीं अघाते,—

वह तो प्रेम,
तुम्हारा श्रीमुख
तमय अतर को देता मुख ।

१९७१

मूय मनुट ग्रीमवी गती के वन दिग् भास्वर
 आओ हे नय वप, अवतरण ररो घरा पर।
 गोलो त्रिकसित गप्ट्रा के जडता के वधा,
 मनुप्यतर में जो जन भू पर मव से निधन।
 दानवीय ध्वसास्त्रो का वर जो नित सचय
 वैनानिक कौशल का करने घोर अपन्यय।

तोडो वटु श्रुतला दैय जजर भूजन की,
 सुलभ न जिनको सुविधा अत्र वमन जागन की।
 प्राप्त नही शिक्षा सस्कृति के साधन विकसित—
 क्षुधित अविकसित देश तुम्हारे प्रति आशावित।

सजन शख फूको हे, अतस्वर से मुखरित,
 नव जीवन उमेपा से जन-मन हो प्रेरित।
 शात घरा देशो के हा स्पघा-सघपण,
 राग-द्वेष के भरें हृदय के रक्त स्रवित व्रण।

काल दूत, विनान ज्ञान में भरो मतुलन,
 नयी चेतना का प्रतीक हो जन भ प्राण।

देवोत्थान

जवशती में

हम मानव में

दानव को करते आए

अभिषेकित!

गहन मतोवज्ञानिक स्तर पर

पश प्रवृत्तिया को

जन जन के जीवन मन म

करते आए स्थापित!

जगले फड़ दगध सभजत

वीतेगे अव

देवा मे फिर

मानव अतर को करने में मडित—

माननीय जीवन को

भावी परा स्वग में

करने पूण प्रतिष्ठित!

कितना काय अभी करना ह—

मोच मोच कर

विस्मय से अभिभत वभी

हो उटता अतर!

मुदर वाह्य प्रवृत्ति जग,—

इसमे भी सदरतर

मानव का अतजग—

मरुम विभज मे भाम्बर!

अतर्मुख हो हमें योजना
 आत्मिक वैभव—
 उमे अवतरित करना
 भू जीवन में अभिनय!

उर में अतर्हित
 शोभा के भुवन अगोचर
 इद्रलोक की सपद् भी
 जिन पर न्योछावर!

इद्रचाप पुल पर चलती
 अप्सरा मनोहर
 सजन चेतना नभ मे
 स्वप्निल नूपुर ध्वनि कर!

मूक अचेतन उपचेतन
 लोका के गह्वर
 जाग गह्य तद्रा से
 मन मे भरते ममर!

देवो का हो स्वर्ग महत्—
 पर जन धरणी पर
 रचना हमको मानवीय
 नव स्वर्ग महत्तर—

मन के पशु को,
 दानव को कर शन उन्नमित—
 आओ, भूजन,
 करें विश्व जीवन नव निर्मित!

सक्रांति

पीरे पत्तो में लपेट दी तुमने पाडुर
विश्व प्रकृति की देह—घूल से सँजो क्षितिज मुख।
मुक्त दिगवर अतरिक्ष दिग्बता चिन्तन रत,
सुदर लगता मौन दृश्य सहार सृजन का।

यह शिव का हो महा शमगान—शूय, भस्मावृत,
जहा जगत-जीवन लेता नव जम निरतर—
वरद अष्टमुग्य तत्वो की पावन छाया में।
गभित विश्व प्रकृति—भावी की स्वर्णिमकोपल
जाग रही स्वप्निल तद्रा से, युग चेतन हो।

मानव के अतजग में भी गूड अगोचर
महा त्रांति अब मची हुई—चेतना विटप में
नग्न ह्रास विघटन का पतवर छाया दारुण।
अध धुध में देय न पाती मन की आँखें—
अधकार ही भाव मूल्य बनता जाता जब।

मृत्यु नास सशय-हिम जजर, जास्था विरहित
देख न पाते लोग ओट में दिग् विनाग की
नया मनुज ले रहा जम अब नये त्रिदश में।

चाँद

मुझे नहीं जच्छा लगता नि चाद मे जाकर
 चद्र पट्टा का खाद, नू भू मानव नोचे
 गशि का चादी के दपण मा हँसमुय आनत —
 धायल कर उसका कोमल उर लाह नया से।

जाज पूर्णिमा का, सरोज सा फुल सुधाकर
 कितना मुदर लगता राजहम सा तिरता
 रजत नीर सलिला में—म्बपना के सुरधन पर
 छोले स्वर्णिम अतरिक्ष की शरद विभा मे।
 मभव , दूरी के कारण ही, उसके विक्षत
 गौर अग में लगी खराच नहीं दिखती हो।

वह स्वर्गिक सौंदर्य कलर सा, उमी भाव से
 म्नेह मुधा रम वृष्टि पर रहा भू-अनल में,—
 भुला रक्त प्रिय ववर नर के उत्पाना का।—
 जा धरती का दय दुरा वा नरक बना अत्र
 चद्र लाक में नीड बसाने का साहस कर
 स्पर्धा का अभियान वहाँ ले जाता गमित।

अति यात्रकता

निमल अब जानाश ! घग दिग् ज्योति स्नात सी
 मुदर लगती ! बीत गए झड झथा के दिन !
 निखर उठी अब सृष्टि सद्य जमे नव निशु सी !
 गात समीरण—श्वास रोक एकाग्र समाधित !
 पत्र अकपित, नम्र क्षितिज, हरिताभ घुले तरु—
 ऐसा उज्वल स्पश विश्व का मिला न पहिले !
 सभव, आधी पानी दुर्दिन मे पीडित जग
 ऐसी सौम्य पवित्र मन स्थिति अनुभव करता !

वतमान झड अघड तूफानो का युग भी
 रौंद रहा अब मनुज जगत् को—अपनी यात्रिक
 लौह भयकरता से—ध्वसात्मक टापा से !
 जट्टहाम करता ककाड खडा यत्रा का !
 परिवर्तित हो रही पीठिया—भू जीवन की—
 उद्देलित चेतना !—चतुर्दिक् उथल पुथल मी
 मचती जानी,—जड यात्रिकता का आडवर
 बढ़ता जाता ! सिमट रहा जन जगत् विवश हो,
 सपों की ऐंठी रस्मी सा ! देश विपैले
 पाशा में कमते जाने हे, भौतिकता के
 जट विद्युत् दगा मे प्रेरित !—कहा आज जग,
 किधर मनुजता, क्या ध्रुव लदय !—न समझ पा रहा
 मनुज बुद्धि हत ! दानव-मे सगणव यत्र ही
 सच्चान्ति कर पाएँगे मभत्र भविष्य में
 मनुज नियति को जग जोत्रनको ! स्वय मनुज
 वन रहा यत्र प्राविधिक तत्र कौगल में दीक्षित !

कंप्यूटर ही कंप्यूटर अर रह जाएँग
 कल ते जड जग में—विस्थापित कर मनुष्य ता!
 वही सिधु आदोलित, जटिल, परस्पर गुपित
 महत विश्व जीवन को स्वात घरे सुयत्रस्थित—
 वहिभ्रांत नर टूमि मा रेंगेगा तव भू पर!

या सभत्र नर आत्म-बोध म अभिप्ररित हा
 अघ घुघ मे उत्र यत्र युग की झज्ञा के,
 विचरण करे नए क्षितिजा की निमलता में
 यात्रिकता के धूमा मे उमुक्त विश्व में
 मनुष्यत्र को यत्रा के उपर म्यापित कर!
 और तडित अणु के अदवा की रश्मि खीचकर
 सोजे अतर्मुल जीवन-मौदय शाति सुग!

किंतु, एक अज्ञेय मृत्यु जो व्याप्त चतुर्विक्
मिलता मुझे निसर्ग जगत् में,—अभिव्यक्त मभवत्
नहीं हुआ मनुष्य में ! वह है भूमा का विराट्
सौंदर्य अनामय ! जो पावक स्पर्शों से छत्र
मनुज प्रकृति को तीर्थ स्नात, तमय, अत वेदित
कर देता—निज असीमता की पवित्रता में
सद्य स्मित !—वही शुभ्र मौदय मुझे
करता आकर्षित,—मौन समाधित !
मभव, इस सामूहिक सस्कारों के युग में
उस विराट्ता से वंचित न रहे मानव जग !

कला की सार्थकता

गण्डग युग अब विद्यमान माहित्य, वग में,—
 अभिवादा करता मा! गजेदाता वह रही
 उपेक्षिता, दलिना विरुता के प्रति—असग्य जा!
 वाछनीय यह सभी भाँति—भू ती कुम्पता
 मिटे, हटे दारिद्र्य, छटें दुग्नि के बादल!
 गवटस प्रमुग्ध प्रतीक आज विकलाग जगत का!

देव सने सौदय अमुदरता म भी मन
 वपाकि असुदरता केवल सकीण दष्टि भर!
 वकटस हो वदम—मव रुछ ही सुदर जग में!
 विकसित हो भू मन, व्यापक सौदय-बोध हो,
 कला दृष्टि नव रूप करे निर्माण विश्व का—
 सभी समान,—वहे जग में न विपमता का विप!

पर, गुलाब का मूल्य न इससे कम हो सकता!—
 गुण विशिष्टता सदा समादृत होगी जग में!
 सौकुमार्य, सौदय, सुरकि, सस्वार सधमतम
 नम विवास के शाश्वत श्रेष्ठ प्रतीक रहेंगे
 जगत चक्र में! साधारणता की शोभा में
 अवगाहन कर—मूल्य समन पाएगा हृदय
 अधिक सत्तम ना,—जो विवाम का लक्ष्य निरतर!

अतः कैंटमो की बहुमत की जन-युग भू पर
 आभिजात्य गरिमा, अतः शोभा के कारण,
 गौरव मिलता मदा रहेगा गण विशिष्टता को—
 विभूति जो!

गुण बगिष्ट्य अल्पमत होने पर भी विजयी
 होगा सतत,—मजन कला की साथवता जो!

दीप्त भावना

आज भावना बद्धि-विरण से आलोकित हो
परिणत होती नयी चेतना में जीवन की,—
जीव प्रकृति की लघु सीमाओं को अतिदम कर!

प्राणभावना, गत जीवन की रुचियों, सम्कारों से प्रेरित,
भले सहज अभिभूत हृदय करती ही जन का,
वश मुकुर में अतिरजित हो—और लोकप्रिय भी
प्रतीत हो,—मनुष्यत्व का परिष्कार कर
नये मनुज को जन्म नहीं दे सकती वह व्यक्तिगत
जहता, रागद्वेष, सुगदुख, मानसिक जीव प्रक्रिया
अभिव्यक्त भर करती वह जो गौण सत्य है।
विरह मिलन सवेग, प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ ही
मुखरित होती उसमें,—वासी भावमूल्य जो।

बुद्धि-स्पर्श में ही चिद्दीप्त राग भावना
नयी पीठिका प्रस्तुत कर सकती जीवन की—
भू विकास के लिए परम अनिवाय चरण जो।—
आज विश्व मन को होना सवाग समन्वित।

शिशु और जगत्

शिशु समान लगते हैं,—किंतु पृथक् स्वभाव ले
पैदा होते हैं।—अबोध, हा, भंटे सभी हैं।
निज हृदि-गुण अनुस्पृष्ट पावाह्य जगत् का
विविध रूप से मूल्यांकन करते हैं उसका—
भिन्न धारणा बना विश्व के प्रति अनुभव से।

सघषण करते अविरत हैं जगत् जीवन में—
उसे बदलना कठिन जानकर स्वयं बदलते,
निज स्वभाव हृदि का भी मूल्य समझ इस जन्म में।
क्षण छोड़नी पड़ती उनको हैं सब स्थितियां
बहिरंतर की—जो दुर्गम पथ बाधा बनती।—
जिन्हें हटाना संभव नहीं व्यक्ति के बल पर।

स्वयं दया भी नहीं सहायक होनी। उसको
बाह्य भोग से आत्म योग समधिक त्रैयस्कर।
कही छिपा साक्षी अंतर में उनको चुपके
आत्म अनात्म, असत् सत् की पहचान प्रताता,—
मग्न बोध दे व्यक्ति विश्व के सौंदर्य का।

क्षीण संपदा अनुभव धक्का वृद्धि गिर उठ में
रह जाती जो,—यह अमग चैतन्य मृत्यु की,
जो उमका चिर मार्गी रहता अन्तिम क्षण तक।

ऊहापोह

ऐसी भी होती मन की स्थिति कभी किसी दिन
जब कि विरोधी दृष्टिगोण दो उभर चित्त में
गूढ समस्या बन, करते आनात बुद्धि को ।
मगल शनि हो खड़े सामने नूर परस्पर ।

ऐसे दुक्षण में सम्यक् कतव्य समझना
सहज नहीं होता । दुबिधा में पड जाता मन ।
बडा कठिन होता अपना विश्लेषण करना ।
यह स्वभाव की सीमा होती और शक्ति भी,
जब कि गहन मथन करता मन—भू जीवन के
द्वंद्वो मे उल्टा—प्रकाश पाने को नूतन ।

समाधान मिलता न सदा ही आत्म-तुष्टिकर ।
सुधी गतागत पर न सोच करते—गीता की
सूक्ति सात्वता देने में जब सफल न होती—
तुम पर देता छोड समस्या का निदान म ।

मौन प्रतीक्षा करता हृदय प्रपन्न बोध की,
चित्त शांत हो स्वयं प्रश्न का बनता उत्तर ।

भूख

म मुग्धा गेहें की घागी
हृप हरित - रामाचित ।

घरती से रज देह सीच कर
सूय विरण से शक्ति खीच कर
म होती वर्धित, रस पोषित ।

एक बात वतश्र दू गोपन—
पृथ्वी सूय-प्रभा से भले
ग्रहण करती म पोषण,—

अपने ही अस्तित्व बोध से
मै उभेपित,
अपने ही भीतर से रहती
सहज उदलसित ।

घुटनो घुटना पहुँच मनुज ने
जय अट्टट युवती सी करती
ताक झाक मै वाहर—
मुये मुनाड पडता—दुस्तर
उदर उदर हा उदर ।

मोच मग्न, विस्मिन मी होकर
बहती म मन ही मन—इशर ।
यह म कैमा करती अनुभव
जीव धारिया वा किरीट जो मानव

जिगने र्ना समाज, मन्थना, मन्त्रति,—
 महत्त विन्त इतिहास
 निम्न साहित्य र्ना जिमनी वृत्ति,—
 धम तान विज्ञान
 मनुज गौरव उद्धापन,
 अतरिशा अभियान
 साहमिवता वा चातव !—

क्षुद्र पेट के बल
 वह वृमि सा रेंग धरा पर
 प्रणत गिडगिडाता
 धिधियाता
 नगा पेट दिखा कर !

तप्त विश्व के सभी चराचर
 सदियो से केवल भूखा नर !

हम मानव के सबधन हित
 करती अपना जीवन अर्पित—
 शस्य श्यामला धरा उवरा
 उपजाती नित अन्न अपरिमित !

फिर भी पेट नही भरता
 मानव वा भूखा—
 पशु पक्षी रहते प्रमत्त
 खा खा सूखा !

साद्य पदाथ जगत में अगणित
 भूय नही मिटती मानव की विंचित !

बुद्ध रहस्य होगा ही इमका गोपन—
साथ समस्या पर मैं तब से
करती आइ चिन्तन!

मुझको लगता—

मात्र पेट की भूख नहीं यह निश्चय,
उसको मनुज तृप्त कर सकता
उपजा भू से जमित अन
भडारा में कर मचय!

चिर अतृप्त पर पेट स्वाथ का
वह न कभी भर सकता,
अति भोगी रे उदर लोभ का
जो न अघाते थकता!

दोना क्षुधा अचेतन मन की,
क्या कर सकती घरती,
जीवन की तृष्णा अथाह
वह नहीं किमी से भरती!

दानवीय उर दैय
न त्रिभुवन की लक्ष्मी हर सकती,
नारकीय तम गत
न अमरो की सपद् तर सकती!

भू मगल के हिन
तन मन—दोनो ही की
खेती आवश्यक,

अन उगाएँ—

साथ निराएँ

मन मे तृष्णा के सत्र कटक!

वितरित हो

जन मे ध्रम फल

घरती की मिटे रिपमता,

विकसित हो

आत्मिक बल,—

सित सयम से आती समता ।

म मुग्धा सोने की वाली

प्राण हरित, रोमाचित—

कहती—

निज जीवन कर अर्पित—

वहिरतर सपन मनुज हो

आत्म बोध से प्रेरित ।

शुभ क्षण

घायल मत्र जग, घायल जब भय मे जन का मन,
छाए है दारुण विनाश के दानव दिग् घन !
क्या तोपें तलवारें व्यर्थ करेंगी लडकर ?
सुलग रही विद्रोह वह्नि अब भीतर बाहर !

अहकार-घन उगल रहे उग सूरज के कर
बदल गइ युग दृष्टि—मूल्य भी गए सब विखर !
उदय हो रही अभिनव संवेदना हृदय में—
मिलता सूक्ष्म प्रकाश नया उसके आशय में !

शस्त्रा का बल स्वयं पराजित—जानें निश्चय,
संभव भले विनाश, न उनमें संभव दिग्जय !
जन्म ले रही नयी शक्ति ज्योतिष कर अंतर,
मानवीय जो, नभ्र,—सूक्ष्म प्रज्ञा की मित कर !

अहकार से मुक्त, दप दशन से विरहित,
मनुष्यत्व के शाश्वत मूल्यों में संयोजित,—
सहज बोध से समन्वय रही वह जन जन का मन,
आलिंगन में बाध समग्र धरा का जीवन !

रोल अँधेरे में प्रकाश का नव वातायन
मनुज नियति का देती वह साथवता नूतन !
घायल जग, घायल आशका से जन का मन,
नव प्रभात के सूर्योदय का भी यह शुभ क्षण !

शख नाद

मेरी वीणा
 स्फटिक शर
 वन गड़ अगाधर
 षकारें फूटती नाद वन
 उर के भीतर ।

वह न स्पश मे वजती,
 जीवन श्वास चाहिए,
 माया मन जग मरे
 नया निरनाम चाहिए !—
 सजन हृष अकुलाता उसमें
 वन दिगत स्वर ।

उमे न बुछ ताडना—
 गध कर जीण विरन मन
 प्राणा में नरना
 जगय जाम्या वा यौन !—
 नये मूय के प्रति
 धर्दारित कर जन जतर ।

शब्द नहीं वह, अतध्वनि,
 मुखरित भू - अवर !
 सुलते अर्था के अनत
 स्तर पर निगूढ स्तर !
 वह प्रतीक भर, —नाद मूत
 निशब्द दिगतर !

आज़्जार ही शख
 विश्व सागर से निसत,
 गत ध्वनि वर्णों भावा मे
 नव जीवन मुखरित, —
 शुभ्र जागरण का आह्वान
 सुनो नव स्त्री नर !

धूप का टुकड़ा

एक धूप का हँसमुख टुकड़ा
तर के हरे थरोखे से झर
अलसाया है धरा धूल पर—
चिड़िया के सुफेद वच्चे सा।

उसे प्यार है भू रज से
लेटा है चुपके।

वह उड़ कर
किरणा के रोमिल पख खोल
तर पर चढ़
ओझल हो सकता फिर अमित नील में।
लोग समझते
म उसको व्यक्तित्व दे रहा
कला स्पश में।

मुझको लगता
वही कला को देता निज व्यक्तित्व
स्वयं व्यक्तित्ववान्
ज्योतिमय जो।

भूरज में लिपटा
श्री शुभ्र धूप का टुकड़ा
वह रे स्वयंप्रकाश
अखंड प्रकाशवान्।

भारत भू

युग युग की आस्था मन की डगमगा रही अब,
 धरती सा धीरज भी भूजन खोने अपना,
 रक्त-नखर-द्रष्टा निमम यथाथ के सम्मुख
 माननीय आदर्शवाद मन लगता मपना !

औंधे मुह गिर पश्चिम के जगमग प्रभाव में
 अब अनुकरण करते नव शिक्षित पग पग पर,
 भूल गइ भू अपना अतर-आलोकित मुख,
 जीवन स्थितिया होती जाती प्रतिदिन दुस्तर !

लोग न परिचित निज भू की ससृष्ट आत्मा से,
 मध्ययुगी कीचड में लिपटे रुद्धिग्रस्त जन,
 हीन भावना पीडित इस दिग् भ्रात देश का
 इतर ही रक्षक ! विघटित होता प्रतिक्षण मन !

तोड रही दम मृत्यु शांति छाइ अतर में
 कभी घुमड आए भू पर धिर अब ववटर—
 रक्त स्नान कर घृणित विपमताएँ जीवन की
 मभव, नम रचना समत्व में वेंवें परस्पर !

मुझे महत् आगा भारत भू के भविष्य में
 जो अतर्मुग्य आत्म-सत्य की साधन निश्चित,
 मानवीय ऐसा पदाय दुल्भ जगती में—
 जागेगा यह देश—करेगा जग को जागत !

पूर्ण क्षण

एक गीत तू ओम,—हँसी था, आँसू था पी,
ताँप रहा पत्ते ते परतल में गिर धर धर ।
उमे देखा रहा एटल म जाने क्या
भास मिधु गा मिन मूत उमने उर भीतर ।

छोटा मा वह एक विष्णु मे स्मित-मुर दीप्ति,
एक मूक क्षण, एक मलयगण उममें जीवित ।
छोड पत्र-परतल तिर मीन, विचार मग्न सा
वह यो गया गगन में वातर वाण अलभित ।

वह यो गया? नहीं,—विश्वास न होता मन को
वह अनन का यात्री, वह तण वण त सहचर ।
आता जाता रहता वह उड तभी ध्योम में
कभी उतर भूपर फिर हँसता रोता क्षण भर ।

मूर्ते अमृत सहज होता वह भाव उलसित,
सृजन कला का गूढ रहस्य विडु सा गोपन ।—
उस पर श्री सौंदर्य समस्त मृष्टि का केंद्रित,
वह न हिमालय मे छोटा—वह क्षुद्र तुहिन वण ।

लघु हिम वण या गीत-पक्ति रचना क्या सभव
यदि न आत्म तमयता में हो कला निष्ठावर ?
कहा खोजते शाश्वत मे, अव्यय, अनंत में—
एक ओम वण, एक पूण क्षण मे भी स्वर ।

कविधर्म

मच कहना ही जग में कवि का धम है,
उमे नही कोइ माने या पहचाने,
वाहर का जन-घोष नही कवि की वाणी,
भीतर म्वर जगने पर वह लगता गाने !

वह यथाथ के माप तोल की तुला नही,—
भाव बदलता रहता जिसका दिन प्रतिदिन,
मानव आत्मा की गरिमा का ज्ञान उसे
जिममे साथक होते जीवन के पल छिन !

शब्द नही ह जटा, भाव भी मूक जहाँ,
वह अवाक् नीरवता को देता वाणी,—
मोइ रहती जग के कोलाहल में जो
निराकार की प्रतिमा गढ़ता करयाणी !

आदोलित जन सागर जब भरता मजन
ध्यान मौन मुनता युग परिवर्तन के स्वर,
सौम्य चद्र सा मूक्षम ज्योति वरमाता वह
जन धरणी को नत्र जीवन ज्वारो मे भर !

निखिल विपमताएँ स्वर-लय में बँध जाती
वनता युग-मगीत जगत् का सघपण,
कटु यथाथ ढल नए विश्व आदर्शों में
मगर धन उन वरमाता नव भाव-मुमन !

सक्रमण

विस्तृत लगती रुद्ध दिशा,
 आश्चय चक्किन सा अत्रर,
 सदियो का दारिद्र्य दैत्य
 अत्र जगता अँगडाइ भर!

करवट लेता जन भ-जीवन,
 मन सिवु आदोलित,
 अधकार की गुहा घरा की
 अव धीरे आलोकिन!

प्राणा मे रस ज्जार,
 चेतना में प्रभात का स्पदन
 नयी एकता में वँधने को
 मानव का खटित मन!

नव सौंदर्योंमेप
 मनोनयना को रयता विस्मित,
 निखर रहा मानव का मुख
 नव गरिमा रेखा मडित!

खोल दिए उपचेतन
 निश्चेतन ने गोपन गह्वर
 रुकी हुद थी विश्व प्रवृति
 क्या हो उमका म्पातर!

अनगढ़ पापाणा में
 मणि रत्ना को छाट मँजोर
 नव मूल्या के वैभ्र में
 गढ़ना मानव का अतर।

यह महान मश्राति काल
 सुनता म फिर डमरु म्पन,
 परिव्रतन खेलता फाग,
 युग करता ताडव नतन।

खडे सामने जम मृत्यु,
 विप अमत, भीम औ' सुदर,
 विजय पराजय, ह्रास प्रगति का
 रूपक! दृश्य भयवर।

जीवन सघषण को देती
 नयी दिशा लोकोत्तर
 सृजन चेतना के सुनता म
 दिड मादन वशी स्पर।

युग रमणी

आज सभी क्षेत्रों में स्त्री नेतृत्व ग्रहण कर
आगे बढ़ती—लाघ देहरी घर आगन की!—
डाक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, प्राध्यापक वह
पुरुष वर्ग से हांड ले रही युग-जीवन की।

पर्वतरोही, मन्त्रि, कुशल धान चालन वह,
युग प्रबुद्ध, शिक्षित, समाज निर्माता नारी,
वह स्वतंत्र, नर की समकक्षी, नेता, मंत्री,
अवगत अरु सत्रला रहलाने की अधिकांगी।

पुरुषों के गुण आत्मनात करती वह प्रतिदिन,
यत्र मम्यता की भी माग यही निमात्र,
किन्तु कहा वह सुघर शील सुपमा की प्रतिमा
अंतरचेनन गरिमा उर में भरती ।।

पूरा चाद, पिक मृग, चलोमि ज्ञप-निवित्र प्रवृत्ति
श्री गोभा उपकरण प्रणत ये जिमके
कहा अनिचनीय नील सा उर
मर्यादा का मधुर मुकुर म्मित ताव मात्र

निवित्र मम्यता वनी प्रमात्रन युग
पर अन मौदय गी गया—प्रमद
भोग तल्प वह मात्र—न श्रदा पात्र
हृदय-मत्य ही माय—गन्त्रा-

वस्तु बोध

वस्तु जगत चाहिए मभ्य नर को अब,
भाव गीत मे ऊर गया उसका मन ।

जत्र रवीन्द्र सगीत न भाता उर को
वहरे हृदयो को न हिलाता गायन,
सूक्ष्म कल्पना की उडान पर हसते,
उहें मूल भगुर के प्रति आकषण ।

नरा तुच्छ कुत्सित यथाथ की सेवक,
काव्य न अब सौदय बोध का दपण,
यौन गध प्रति जध प्राण मन प्रेरित
नाम, अनास्था, मशय के उर में व्रण ।

परिवतन युग गुह्य अचेतन से जग
घणित विकृतिया उमड रही मन में उन,
निधटित मूया के ह्यामोमुख युग म
स्पधा कुत्सा का उर मे चन्ता रण ।

भाव भूमि नव उदय हृदय में होकर
जनर में सतुलन भरेगी नूतन,
नये सत्य का ज्योति स्पश पा जन मन
मनुष्यत्व के प्रति होगा नर चेतन ।

वस्तु जगत की सीमाएँ अतिनम कर
भाव योत्र नर भरता उर में म्पदन ।

विकास क्रम

मानवीय मवेदन गूँय घरा जीवन जब!—
निश्चित यत्र सम्यता, विश्व की अतुल मपदा
पूर्ति नहीं कर सकती इस दारुण अभाव की।

एक ओर भू के असह्य जन गण का जीवन
विगत युग की दृष्टि रीतियाँ में पथराया
मनुज चतना के विनाम पथ का अवरोधक।
और दूसरी ओर आधुनिक भौतिक युग के
विपुल विभव, मुख मुवित्रा का आकाशी मानव
भोगवाद के पीछे पागल, प्रहिभ्रांत हो,
भल गया—बहुविधि स्थापित स्वार्थों से जजर,
वह प्रतिनिधि भावी नव भू जीवन विकास का,—
कटु स्पर्धा में दग्ध नय विजय के जग में।

मनुष्यत्व में निरहित नर-पशु विचरण करता
भग्न परा पर,—अतर्मूल्यों में वियुक्त कर
इन्द्रिय जीवन का भगुर मुख। मध्य युग में
ज्यो विभक्त था भाव-बोध इन्द्रिय जीवन से।

लौह यानियों की मत्ति रोपोंट, मन्त्र
स्थान ग्रहण कर रहे मुक्त मानव आत्मा का
निर्मित कर परिवेग जटिल दृष्टिम स्थितियाँ का,
जगद मनुज जीवन को यत्रा के पजा में।—
इन्द्र ही रक्षक अत्र हृदयहीन मानव का।

भीम भयकर मोड ले रही मनुज सम्यता
 दुबल हृदय न तनिक कल्पना भी कर सकता
 जीवन की उस नयी भूमिका का—गत मीमित
 अभ्यासा में वधा मनुज-मन अक्षम उसके ।

पिघल माम म जाएँगे जग के विधान सत्र
 भात्र ऊष्णिमा में वह नव प्राणिक जीवन की—
 महत ज्वार उठ विश्व चेतना के समुद्र में
 प्लावित कर देगा सक्त तट विगत युगा के ।—
 महत सौग्य माभाग्य मनुज के लिए मुरक्षित ।

लाठी को घोडा

छुटपन में मुझका प्रिय था लाठी का घोडा
 उमने तब से मेरा साथ नहीं ही छोडा।
 उसको कभी लगाना पडा न कम कर कोटा
 आगन मे भागता स्वय वह ढीठ निगोडा।
 घोडा कहिए, वायुयान या उसका हाथी
 ऊपर नीचे मुझे घुमाता जीवन साथी।

धुसता वह मुझको ले मन के गहन बना में,
 मघपों के खदक करता पार क्षणा में।
 रजत प्रमारा में आत्मा के मुझे उडाता,—
 शोभा का वैभव मेरे उर में भर जाता।

वह अनिच्छ मुदरी कभी था नव यौवन में
 आता चुपके प्राणा के जपन्त आगन मे।
 सारे जग में मिगी न वह नव युवती मुदर,
 क्वाग ही मैं रहा, खोजना उसे निरतर।

स्वर्गिक ऐश्वर्यों का मन में भर सम्मोहन
 गोलें उमने कितने चित्तन के वानायन।
 कहाँ कहा मैं नहीं गया हूँ उम पर चढ़कर
 विद्युद् गामो पया से कर पार दिगतर।
 वचपन से वह रहा सदा मेरा प्रिय सहचर
 उच्च चेतना गिखरा का रोही दिग् भास्वर।

उसी मनोगति से वह अब भी उड़ता निस्वर
 स्वर्ग सपदा भू पर बरसाने को तत्पर ।
 जन मन के दारिद्र्य दुख में बर अगगाहन
 निज उर के शीणित से धोता भू का आनन ।

इन्द्रधनुष बन छूता जीवन के दिग्गत स्मित
 धरा स्वर्ग रचना के प्रति निष्ठा से प्रेरित ।
 नया क्षितिज खोलता मुग्ध आँखों के सम्मुख
 नव प्रकाश, उल्लास, प्रीति के प्रति कर उमुख ।
 वह शैशव का चेतक, लाठी का प्रिय घोड़ा
 नयी दिशाओं को उसने मेरा मन मोड़ा ।

अमीप्सा

सौदया की सौग्भ मे
 मन को नहलाओ,
 सूक्ष्म भाव ऐश्वय-भगन मे
 मुझे उडाओ,—

ओ मेरे प्रेमी,
 पावनता की लपटो मे
 मेरे तमय तन मन
 प्राणा को लिपटाओ!

कौन भूमि वह?—
 स्वप्नो के पावडे विछाकर
 जहा विचरते तुम
 अतर के तद्गत क्षण में—

जहा बला कल्पना तूलि से
 सृजन सत्य को
 सतत सँवारा करती
 स्रष्टा के दपण में!

मुझको नव चैतय विभूति
 बना रस अकल्प
 नव मानव के मन प्राणी में
 सहज रमाओ!

सौ सौ रूपों में
 अमृत श्री शोभा होती
 स्वयं जहा साकार
 समाधित उर चित्तन में,

अभिव्यक्ति की इद्रधनुष
 रत्नच्छायाएँ
 लोटा सी करती
 उमेपित उर-आगन में—

मुझे प्रेरणाआ,
 उमेपा के उस जग म
 नव प्रहप की सित वाहो में भर
 ले जाओ!

स्वग मुघा के घट पर घट
 पीते न अधाना
 जहाँ युगा म प्यागा
 निश्चेतन उपचतन

तप्त नहीं हाना
 तुमसे मवस्त्र दान पा
 जन भू है प्राणा का
 श्वाय जातुत्र यात्रा!

जहा प्रतीभा में ग प्रेम
 मनुज नारी के
 जन्मग मणि गातना पर
 मृग उद्यारा!

ओ मेरे साथी,
पावनता की आभा में
मेरे तन मन प्राणा को
अहरह लिपटाओ।

अनुपमा

वाल भवन में तुम्हे देख कर आज अनुपमे,
 आत्म पराजित अनुभव करता म निज मन में—
 कसे तुम्हें उवाहें?—माग न मुझे सूचता।
 जह, कैसी दयनीय मलिन स्थिति में रहती तुम
 छोटे बच्चा की सस्था में पडी उपेक्षित—
 मानव उर की निममता का नरक द्वार जो।

तुम्हे गोद लेने को आतुर तब से मेरा
 हृदय तडपता—तुम निरीह सुकुमार बालिका,
 हिम निपात असि हत प्राणो की कलिका कामल।

तुम हो कुछ अस्वस्थ, चिकित्सक कहते मुझसे
 एक पर की हड्डी में सूजन ह सभव,—
 म इसका उपचार कराऊंगा, निष्ठा से
 पालन पोषण का दायित्व संभाल तुम्हारा
 साथक समझूंगा अपना जीवन, प्रिय दुहिते!
 तुमसे मुदर क्या मुझको नही चाहिए।

तुम सुदर बन सको हृदय मे—या अनुकूल
 परिस्थिति, रचिकर शिक्षा दीक्षा—उनत ससृत
 शील-मौम्य सत्कार ग्रहण कर सका निरतर,—
 मन का ही सौदय चाहता हूँ म तुमसे।

स्तुति के प्रति

एक किरण उतरी आगन में
 म उमवो कहता स्तुति
 मन कथ में छाड़ नीरव
 उमकी स्मित शैशव द्युति ।
 धरा प्रायना सी वह पावन
 उठ कर घीरे उपर
 इश्वर का मुख देख सके
 अनिमेष हृदय में छवि भर ।

उतर वस्त्र सा देह-बोध
 छाया सा गिर चरणो पर
 अपने ही में उसे अनावृत
 स्थित रख सके निरतर ।

बूल फूल की जीवन बीथी में
 विचरे वह निभय,
 जग के द्वन्द्वो मे हो परिचित,
 भूजन के प्रति सहृदय ।

चरण चिह्न जो धरती की
 रज में हो उमरे अक्षित
 दीपित हो उनसे युग का पय—
 नयी लोक हा निर्मित ।

रचना की शक्तियाँ
 प्रेरणा पाएँ उसके मुख में,
 निज मुख में ही अविच्छिन्न
 सयुक्त अय के दुख में।

मन में सुदर हो वह,
 अपने कर्मों में सुदरतर,
 युग प्रबुद्ध हो बुद्धि,
 सरल उर जीवन इशर का घर।

देश देश की भाव विभव
 सुपमा से हो वह मडित,
 शोभा प्रतिभा को करता म
 भू मगल प्रति अर्पित।

दीपशिखा वालिका
 गेह जो मेरा करती दीपित
 पूण योवना उपा वन वह
 करे विश्व पथ ज्योतिष।

पावन अवोधता

मुझको लिखता देख, हाथ से कलम छीनकर,
मेरी पोती ने टेढ़ी मढ़ी रेखाएँ
कागज पर कुछ खींच, मोड़ अपनी प्रिय ग्रीवा,
देखा मेरी ओर, दप से स्फीत दृष्टि से।

उन निमल नीले नयना से झाँक रहा था
विस्मय का आकाश, अमित विश्वास से भरा,
आत्म विजय के स्मित प्रकाश से विस्फागित सा।

मुग्ध भाव से पीता रहा सरल प्रमत्तता
म अपलक चितवन की—मन मे लगा मोचने
वचन की पावन अवोधता कैसी अद्भुत,
मधुर, कल्पना प्रिय होती ह।

सहसा मेरा
ध्यान गया अपने ऊपर। कुठ सीधे टेढ़े
आखर कागज पर लिख, उनको गीत छद कह,
म भी सभरत सबन समन्ता हूँ अब
अपने को, गौरव से पूरा। क्या मनुष्य में
शाश्वत शैशव वही छिपा रहता, अन्त की
भाव मूक गोपन सोहा में?

कितना योडा
मनुज जान पाता आजीवन विद्याजन कर।
सदा अगम्य रहेगा ज्ञान, मनुज अवोध शिशु।
पोती की विस्मित चितवन म मत्य था मृत।

यथार्थ और आदर्श

ज्यो ज्यो म देखता
 निवट से मल यथाथ का
 आदर्शों का ही प्रेमी बनता जाता मन !

कदम की साथकता इसमें
 वह पकज को
 देता जम—
 उध्वमुख लोचन !

लक्ष्य विना ज्यां माग व्यथ ही,
 त्या आदर्श विना यथाथ का प्रागण,
 मानवीय आदर्श साध्य—
 अनगड यथाथ जड,
 आत्म प्रगति के कटक-भय का साधन !

वह्निभ्रांत युग
 भोगवाद के पीछे पागल
 नवो मानव आत्मा का
 चिर अजित गोम्ब घन !—

नग्न यौन शोभा में लिपटा
 जड यथाथ को
 चित्ताकषय देता बहु विनापन !

जीवन सघपण की
 करण दुहाइ देकर
 नारकीय खल कर्मों में रत भूजन—
 राल टपकती मुंह से
 घन की बातें सुनकर,
 ये निरीह का करते शोषण दोहन।

समझीता कग्ते रहते
 आत्मा मे प्रतिक्षण
 घोषित कर विकसित यथाथ का दर्शन,—
 कदम कृमि ये
 कदम जग ही भाता इनका
 कुत्सित घणित
 विकृत के प्रति ही
 करते आत्म समपण।

वे यथाथ का भी तो
 मृत्यु भला क्या जाने?—
 उत्तू मीघा करना जिनको प्रतिक्षण,
 प्रथम पत्रित में मभ्य जनो की
 स्वय प्रतिष्ठित—
 मनुष्यता मे वचित जिनका जीवन।
 जत, देखता जत्र
 यथाथ के पक्षधरा को,
 आदर्शों के प्रति
 समधिन्न अर्पित होना मन—

मृत्यु यही जीवन यथाथ का
 मानवीय आदर्शों का
 बन सके प्रणत मिहामन।

मेरा जग

रवि, किम दुनिया में रहते तुम?—
 पूछा करते मुझसे सब जन,
 तुम कोकिल चातक के स्वर में
 गाते रहते किसके गायन?

देखते नहीं, बसा तीखा
 अब भू पर जीवन मधपण,
 प्रतिदिन दुष्कर होता जाता
 जग मे जीवन करना धारण!

धँसने को मानसता का रथ
 अब भौतिक कदम मे दुगम,
 प्राणो का दुदम मत्त वृषभ
 तोडता रास, पथ कर जतित्रम!

हा, कहा गया जीवन सारथि,
 मच रही पुकार सकल जग मे,
 अब दिशा हीन भागती बुद्धि,
 गहरे खाड खदक मग मे!

दारिद्र्य दुख का ढो पवत
 जन कृमि अब जीवन मृत, हत मन,
 हो विश्व विपमता से आहत
 विध्वंस गरजने को भीषण!

अघा मा भट्टर रहा विवेक
 शनमुख पथो मे लक्ष्य-हीन,
 दिशि रहित ह्रास विघटन तम मे
 प्रज्ञा प्रदीप लौ हुड क्षीण!

सवके भीतर अत्र मूक रदन,
 सवके उर मे नैराश्य घोर,
 आशाञ्जाक्षाएँ धूम-शेष,
 दीव्यता विपद् का नही छोर! —

म चुप रहता, कहता मन मे
 सव ज्ञात मुझे भय का कारण,
 शम्भो से समधिक शब्दा से
 कवि लटता जग जीवन का रण!

अपने मे, अपने जग में रत
 सघषण का कर विज्ञापन
 तुम लाभ उठाने जगती से
 जीवन का कर शोषण दोहन!

म स्रष्टा के जग मे रहता
 अब मृजन भूमि मेरा जागन,
 उपकरण जुटाता रहता नित
 जग में आए नव मयोजन!

वृमि मानव भी मानव की कृति,
 युग-जीवन उमरा ही दपण,—
 म लंघ स्वय को, निज युग की
 जन मृष्टि रच रहा हूँ नूतन!

निर्मित करता नव मानव म
 युग सीमाआ से उठ ऊपर,
 जो नव प्रबुद्ध मानवता को
 दे मके जम रस की भूपर।

म जिस भू पर रहता, उसमे
 बल तुम को भी करना विचरण,
 मेरे प्रिय कोयल पी-खग भी
 उस भू का ही करते कीतन।

मुझमे चिढते वन मित्र शनु—
 म हूँ अचेत युग सक्कट प्रति,
 वासुरी वजा मन के वन मे
 खोजा करता नव स्वर-मगति।

उनको न सूक्ष्म का तनिक बोध,
 वे दवे स्थूल के पवत से,
 मैं एक सास म उडा उसे
 पाता हूँ शक्ति अनागत मे।

कवि रे भविष्य री त्रात दष्टि,
 देखता जगत के आर-पार,
 स्वर स्पश सुधा मे जन मन का
 जीवन का हरता व्यथा भार।

वह बाध विसगति को लय में
 अतजग की कर नयी गीत—
 गाता—शुक् रोर टुगा जग का,
 दे बुद्धिभ्रति को लय-बोध।

मुखर

प्रात आख खुली तो
 खिडकी से आ-आकर
 चिडिया के कलख ने
 अलस उनीदे मन को
 मोह सा लिया!

जाँय मूद
 मै लगा देगने
 झुड झुट सतवहिनी
 जुट मेरे आँगन में
 चहय रही ह
 फुदक फुदक कर
 हृष भरे सँकडा स्वरा में।—
 वाद्यवृद वजता हो
 कठ कोमल कटा वा।

अगडाइ ले,
 म निमग की स्वर धरनिया वा
 रस लेना जाता था मन में
 लेटा, लेटा।

इतने ही में

सतवहिना की मधुर मभा में
एक काव आ गया कहीं से।—

सम्भवत यह मात्र

नि चारु वहा पटा ह।

और चीखने लगा

गरे का फाट काव वह,—

नाम काव कर काँव काँव

कटु काँव काँव!

उमरा मुखर निमग्न था वह

वायम कुल का।

काँव काँव के

उन अनमोह स्वरों में कुड़कुर

रहिनें धीरे ग्दी गिमरन।

अब बठ ररा

दूर बठ ना एतारी स्वर

मर उर का ग्गा वेरने

नीक्षण नाम म।

म उठ बठा—

ग्गा नामन—

गोट मगरना ही बपा

निजयो जाती जग में?

मनुष्य तन्व की

मगर नाम स्वर मगरिया रा

छिन्न निन्न रर

शर शर दग मगर ग्गा

न र जीवने में।

ससृष्ट सौम्य सुयोग्य
 सुरभि के लिए उपेक्षित
 पीछे हटते जाते,
 हटते जाते, उपरत,
 मन के वन में।

कटु कदर्य निमम कठोर
 जगली वाक
 कवसा कठ स्वर मे
 वबर विज्ञापन कर
 निज आसुरी शक्ति का,—
 मुखरित करते
 अनगढ़ जग के लोन मच को,
 आत्मकथा गढ़

लज्जानग्न दप से दक्षित!

विश्व जयी वे निश्चय अत्र—
 पर आत्म पराजित!

सकेत

क्या ऐसा हो सकता?
 जो मैं कहना चाहूँ
 उसे न लिख कर
 शब्द दूसरे ही लिख दू
 कोमल करतल पर! —
 और समझ जाओ
 तुम मेरे मन का आशय?

तुम्हें ज्ञात है
 और मुझे भी, —
 जो कुछ कहना मुझे
 वही क्या तुमसे कहता?
 या जो तुमको कहना हो
 क्या तुम वह कहती?

शब्द खोसले
 स्थूल मन स्थितिषा के चोतक।
 सूक्ष्म भाव जनकहे
 समझ में आ जात नित।

उहें चाहने पर भी
 नहीं कहा जा सकता।
 तब वे अपना स्पश
 मम या म्ल्य
 मभी कुछ खो देते ह।

मेघा, प्रवचन
 असफ़ठ होते
 सब क्षेत्रों में—
 सब स्थितियों में।

दूसीलिए
 निस्वर सकेत
 सबल है।
 जीवनप्रद, प्रेरक है
 मुखर शब्द से ।

प्रेम

मुझे स्मरण है—
 वचन में—तब म विशोर था—
 स्फटिक चादनी में बठा
 पवत प्रदेश की—
 सोचा करता
 डूब
 प्रेम के वारे मे म।

कहीं सुना था
 प्रेम बडा अदभुत होता है।
 कोई युवती परी, किशोरी
 जो पहिले परिचित भी न हो—

अचानक आकर
 फूल स्पश पा मधुर प्रेम का
 अर्पित कर देती निज जीवन।

या दोना जन
 एक दूसरे के प्रति विच कर
 कर देते सबस्व निछावर
 प्रेम शक्ति से प्रेरित।

उन्हें मनुज क्या
 यम भी नहीं छुड़ा सकता फिर!
 पुनजम लेकर भी
 वे प्रेमी ही बनते!

तमय हो जाता तन मन तव
 अमर प्रेम के स्वप्न लोक में—
 तारे भी कुछ नीरव स्वर में
 ऐसी ही बातें-मी कहते,
 मुक्त नील भी
 करता सस्मित
 मौन समथन।

धीरे धीरे
 तरुण हुआ म।
 अगणित ग्रथों में की खोज
 जजेय प्रेम की।

देश विदेशों में भी घूमा,
 मिली अनेक युवतिया भी
 सुदरिया—परियाँ—
 भावों का आदान प्रदान
 हुआ भी कुछ से।
 किन्तु, दूसरी ही अनुभूति
 हुई कवि मन को।

आत्म समर्पण करनेवाला
 सवत्यागी रूप प्रेम का
 कही नहीं ही दिखा मुझे।

वस मूक ध्वया,
 वेदना, निराशा,
 अश्रु, तप्त निश्वास
 मिले उपहार रूप में—
 आत्म पराजय
 और ग्लानि भी!
 छायावादी कविया ने
 जिस दुख की महिमा
 गाइ अस्फुट स्वर में
 छिन हृदय तंत्री में! —

सुज्ञ प्रौढ मन
 बोला मन ही मन अपने से—

प्रेम कल्पना है
 किशोर मन की, यौवन की! —
 हा स्वर्गिक कल्पना!
 किन्तु वह इस धरती पर
 कभी उतर
 साकार नहीं होती।

मन वृद्ध हुआ अब!
 वह कहता, कल्पना भले हो
 सत्य बही है,
 मनुज हृदय को प्रिय भी!

कहता आत्म वाघ
 तमय हा—

हा, प्रेमी प्रेमिका युगल भी
वही प्रेम ह।

इश्वर को अर्पित अव,—
भू पर होगा मूर्तित।
तभी स्वर्ग भी सायक होगा
जन धरणी पर।

मन का साथी

कभी सोचता हूँ जब मन में
 क्या म
 एकाकी ही आया जग में?—
 गूला फूग के भूमग में!—

तो, तोता मति बरती घोषण
 गुह गभीर वन,—
 वहाँ अकेले आए हो तुम?
 पूव जम के कर्मों का फल
 अपने सँग में लाए हो तुम!
 इस जीवन में
 पूव जम ही का फल फलता
 कम विषाक निरतर चलता।

रटी रटाइ बातें सुनकर
 मेरा मन बुढ़ देता उत्तर—

पूव जम का यह अनचाहा
 बोझ भले ही म सँग लाया,—

पर जिस पर ह गव मुझे
 जिससे रहता म जीवित
 जिसके प्रति म अर्पित—

वह न पाप गुण्या का फल
—रह नये हा मरत—

जमजात आनन्द
महज जा वरना
उर में प्रतिपल
रही हृदय का मरत।

मुग दुग के कटु दग भुग कर,
राग द्वेष म्यघा के क्षत भर,
मुक्त हृदय

जो जीवा रा रगता अभिवादन,
रंगता नित नर श्री शोभा से
विश्व प्रवृत्ति का आनन।

मुझका मन मे रेजा वाहर
भूमा रा रम लेना जो
भावा की वाहा में भर,—
तदारार हो निस्वर।

अतर-तमय
गूज प्राण मधुकर उठते
जीवन-मधु बरने सचय।
नही अरेला आया म
नि मगय,
बँधा सूक्ष्म आनन्द मूत्र में
जग की भी
अपने ही मँग
लाया हूँ निश्चय।

युग गाथा

इस अवोधता पर जन युग की
हँसता मेरा कवि-मन ।

नर यथाथ के पीछे पागल
खोता जाता आतर मवल,
देख विम्ब निज जग दपण में
भूल गया अपनापन ।

स्थितिया अब उसकी निर्माता
जो स्थितिया मे नहीं समाता,
विजयी स्थितिया, स्वय विजित वह,
भ्रात वहिर्मुख जीवन ।

भोगवाद के प्रति वह अर्पित
आदर्शों को गिनता कल्पित,
मृगतण्णा से जीवन कुठित
उर में कटु स्पर्धा रण ।

सामूहिकता का वह प्रतिनिधि
भूल गया भणि दीप आत्म निधि,
यत्र चक्र वनना उसकी विधि
भौतिक मुख अवलवन ।

अपना दाम जगत का नेता,
 यह दुःखान रग अभिनेता,
 आत्म अध वनता युग वेत्ता,
 जयी माध्य पर साधन।

शस्त्रास्त्रा नी होड गिलर पर
 महानाश के हित नर तत्पर—
 भस्मामुर सिर पर न धरे कर,
 आत्म परीक्षा का क्षण।

भू जीवन यथाथ का आगन,
 घोना मुझको उमका आनन,—
 मानवीय भर उर में स्पदन
 जड को करना चेतन।

जीवन मुक्त

म घरनी री घूळ झाडवर
 यडा मुक्त जीवन र तट पर।

मिन्टी के जड मूव गिलीने
 ये मुक्की अव गभी मँजाने
 नयी चेतना पूर रहा म
 इनमें नव जीवन स्पन्द भर।

इनम नही मनुष्य गभी जन
 पशु भी, वृमि भी अहि भी विष पन
 त्वेव मष्टि धचिन्त्य उद्गमनी
 नया पाघ जगता उर भीतर।

चाव चलावर, म मन ही मन
 मनुज मूर्ति गढता नव चेतन,—
 अतर का दपण हो बाहर
 बाह्य विवृति भर जने न अतर।

सागर लहरे युग-आदीरित्त
 अतर का करती उद्वेलित,
 फेना के शिवरो पर चर म
 युग वगी मे भरता नव स्वर।

जग की सीमाआ में बँध कर
 मनुज न उट पाएगा उपर,
 जन भू जीवा का छप्टा रह
 नव दीपित हो दष्टि दिगतर।

मानवीय बन मके घरा-तल
 नयी चेतना का पा सबल,
 मेरी नव स्रष्टा की तरणी
 पार ग्याए तुम्हें दुबो कर।

मध्य स्थिति

मने चुना अघर अपने हित,
यही मध्य स्थिति सबसे मुदर।

जी करता, होता ऊपर ऋय
भू पर विचरण करता निभय,
अतर तुम मे रहता तमय—
जाता जाता बाहर भीतर।

हृदय कमठ मे स्थित तुम मेरे
जग जीवन नित रहता घेरे,
मुझे चीहते स्नेही चेरे
भव विकास अवलपित जिन पर।

म साधारण मे साधारण
उर में लिए घरा जन के व्रण,
मुझे हिमालय प्रति हिम का वण,
मत्य अखड, अत्यड चराचर।

वद्व नहीं म मुक्त नहीं म,
तुम मे चिर मयुक्त वही म।
तुम्हें देखता मदा यही म
मनूजा में तुम मनुज अनवर।

आत्म-नम्र ग्वते तुम मन को,
 शाश्वत-गर्भित जीवन-क्षण को,
 भरते कम्पा से भू-व्रण को,—
 मिटा आत्म-पर के लघु अतर ।

दूर निःश्रुत आता जाता नित,
 जड नव चित्-स्पर्शा से प्रेरित,
 उर को तुम नित रसते विस्मित
 खोल दृष्टि मे नया दिगतर !

फल फल

निनिमेष गोत्र्य

एव मयोजन श्रीं हर्ती मन
 शिष्ट वण मुदर भावा के
 ज्या प्रतीय हा मापन!
 गौरभ गीमा म भर देते
 जन भू उर का आंगन —
 सुघर पत्र मौदय वरा क
 तुम हा जग में दपण!

फूटा मे क्या होगा कवि
 जपल्य भर रमते लोचन,
 रगा गधा मे हो सवता
 क्या जीवन का पोषण?
 पत्र ह मृत्यु—झुबी तर डाल
 भू प्रति किए समपण,
 निरपम वन निधि वे
 रस करता सहज स्वास्थ्य सपधन!'

"फूट फूल ह, फर फर है,
 तुलना मदैव ही घातर,
 सुदर को मुदर ने लिए
 न वरना दारुण पातक।
 तन ने भोजन के मग
 मन का भोजन भी आवश्यक,
 सुदरता आत्मा की पोषक,
 भू मागन्ध विधायक।

"कला पूण यदि अपने में,
 वह होगी जन अभिभावक,
 सुदरता रस मार मष्टि की,
 सूक्ष्म भाव उत्थायक।
 प्रेम शक्ति की प्रेरक वह,
 जन जीवन अभिमत दायक,
 मजन कम सचालक,
 मधु के फूलो की मधु सायक।"

अतर्जग

जब मेरी हृत्तंत्री में जगना रग स्पदन
 नव स्वर गगनि में-म रथ जाते जट चता ।
 भर-म जान दूर विपमताआ व भू-द्वण,
 निवित्र विश्व में आ जाता आनखिय मनु-न ।

अथ गुले दिग वातायन में मद्य जागृत
 नव प्रभात मुख दिखलाता विरणा मे मडित,—
 मसृण रेगमी आभा जचल मे हो आवत
 अग अग धरती के लगने लगते शाभित ।

गा उठते खग वद, मत्त नाचता ममीरण,
 दुगा कूल, सागर लहर उठ करती नतन,
 मौन मरणा-से करते रवि शशि तारागण
 मानव जीवन का करने नव पर्यालोचन ।

निसशय ही जाता तव मेरा अतमन—
 ये प्रकाश, आनद शाति सौदय के भुवन
 वही मनुज के अतजग ही मे चिर गोपन,—
 प्रेम प्रतीक्षा करता जिनकी पथ म प्रतिक्षण ।

मृत्यु

यह जीवन कितना महान् है। इसके सिर पर
त्रिधि ने नीरव नीलमणि जडित मृत्यु मुकुट धर
गौरव उमे दिया है,—जीवन प्रति हो सहृदय,—
वह फिर मे नव जन्म ग्रहण कर सक्ता निभय।

नव यौवन की मासल शोभा मे हो वेष्टित
विवरण कर सक्ता भू पर प्राणा मे मडित।
जन्म मरण की आश्रमिचीनी मे चिर परिचित
जीवन रे अधिजेय-मत्य जन भू पर निश्चित।

उदय बनी होते कृतात आत्मा के सम्मुख
देव वज्र दृढ नीर गात्र मन को मिग्ता मुख।
पाय यष्टि कर में, वरुणा से आद्र नयन मन,
जीवन मरुक्षव-मे लगते वे चिर गोपन।

मृत्यु लात की दाग्ण ग्थिति दुग देनी मन वा
देव मृत्यु के हिन मनप्त मिग्गते जन को।
आमू की मुक्ता लडिया की माला अनगिन
मृत्यु देव के वक्षस्य में पडनी प्रतिदिन।

सजना अपना का विछोह—भावा का बघन
 सहज न होता छिन, दुःख के लगते दशन।
 पर गरिमा मे सहता उसको लगता शानन,
 मृत का दें सम्मान मृत्यु का निस्तर पूजन।

भ जीवन में भरत-सुंदर मृत्यु अमंगल,
 उमका गुरु व्यक्तित्व गभीर, पवित्र, अनामय।
 मृत्यु पार भी मुझ दिखाइ देता जीवन,
 स्वप्न द्वार भर मृत्यु,—नरें जन सहज सतरण।

यत्र नगर

भगवन ऐमा कभी न हो इस भारत भू मे
 जत्र घर पर घर, मजिल पर सौ मजिल उठकर
 औद्योगिक देगा नगरो मा दारण दुगम
 इट पत्थरा का निमम गद इमे बना दें,—
 टेहे मेहे सर्पोले मार्गो मे गफिन!

जहा देखने को न मिले फूटा के प्रिय मुख,
 मुग्ध खगोखा से आजातर चिडिया फर-फर
 गीता क पयो में मन की ब्रथा अजाने
 उडा न ले जा सके! जहा खिडकी मे खर-खर
 गादी के धक्के सी तूफ न हूँमे फग पर!

जहाँ मूवन व्यक्तित्व नहीं गजाय प्रकृति ता
 घनी साज मज्जाओ में आधुनिक गहा की—
 हरा भग मट्ट द्युट प्रिछा न हो जाँगन में
 पग पग पर उठना दयता मयमली तन्य मा!
 दना न हो उम्वत नीर घमा ते घन मे
 आँवा में बटु जाता गाँवा में चुभता मा!
 भटव न जाए ज्योम्ना विजयी के प्रमाण में
 म्वपना ते जात्र में मन वा रहे लपेटे!

मुक्त प्राणप्रद वहै न वायु—पना की सद्य
 सौरभ-मामा मे जीवन मन का विपाद हर'
 तारा का नभ धुना न हो भीतरी सहन में
 निस्वर्ग सभापण सा करता शरद निशा में।

पङ्कतु पापित श्री सुदर निरपम निसग को
 प्रभु, न कभी रिच्छित मनुज से हाने देता।

चिड़ियों की सभा

चिड़िया की उस बहत् सभा ने
 मुझको चुना मभापति,—
 म भी मन से उडता, गाता,
 भाइ उनकी मगति!

कभी बैठ मेरी गोदी में,
 कधा पर, फिर सिर पर,
 रगने गी मधुर कूजन वे—
 भाव मुग्ध स्वर-सहचर!

मिया मनुज माथी या उनरो
 धे थी मन में तपित,
 मेरे भी मणि-वण कयना-
 पय फडकते पुलकित!

मुनता सहज स्फुरित गायन म,
 मुनता निस्वर अरर,
 चटुल ममीरण, मुखर दिगातें
 स्वर पर हूड निठावर!

निमित्त प्रवृत्ति कर्ताली देनी,
 तखन भगते ममर,
 घुन जाना उर का मिया
 ग्य में खरीन खगार!

पूछा मने, रसे गाती
 तुम रस तमय गायन,
 रस सा जाता काउ भल गति,
 मोहित हो उठते क्षण!

गोले रस, कुछ क्षण नीरव रह,
 नहीं जानते कारण,
 क्या उमेपित होता अतर—
 स्वत फूटते गायन!

तुम्हो बताओ, कवि हो तुम,
 क्या गीत शब्द-स्वर साधन?—
 रहा मोचता जाने कत्र तत्र
 म कर आत्म निरीक्षण!

जान न पाया म भी कुछ भी
 मजन रहम्य अगाधर—
 विहग उड गए थे सव कव के
 मुझना देव निरत्तर!

नही जानता, क्या गाते रस
 गद्य कुमुम क्या निस्सर,—
 म्म मग्गर—दाना क्या रहते
 टगे जानता जतर!

भाव सिद्धि

फूलों की आत्मा में महसा
मेरी भेट हुई निजन में—
उसकी अपलक श्री शोभा से
विस्मय मूढ़ हुआ म क्षण में।

वर्णों की किरणों में गुफित
तन पर साड़ी श्री त्वच-कोमल,
केसरपावक की मधु अण्डों
गोभित थी म्मित मुख पर निश्चल।

मौग्ध की उमद मासा में
प्राण हो उठे मेरे पुलकित,
फूलों ने छू मुझे हँस लिया
प्रीति तडित् में कर तन वेष्टित।

म न सह मना दीप्त स्पश मख
हुआ अब मे उनके मूर्छित,
नीन पचा मरना शोभा विष
गक्ति पात के मुख में दगित।

वाली पुष्पात्मा, तुम मूर्छित
जग ने प्रति, मेरे प्रति जागत,
शोभा की साधना तुम्हारी
पूण हट,—म निद्धि अवलरित।

हृदय चेतना थी यह निमग्न
 मग्न भाव विभव में वलित
 तीव्र स्नान मा कर मेरा मन
 देह मुक्त हा उठा उन्मग्न!

मुझे देव रम तमय स्थिति में
 बोली वह, स्मृति पुलकित मन में,
 कहा समाधित होने? मझको
 स्थापित करो घरा आंगन में!

सोचा, जग के प्रति विरयत रह
 म न पूण हो सकता निश्चित,
 जग जीवन से भाव सिद्धि को
 ररना हागा मुझे समवित!

तव से विश्व विमगतियां में
 अत शोभा कर सयाजित
 नव भू जीवन रचना के प्रति
 सजन हृष से हूँ म प्रेरित!

पत्थर में फूल

दो पापाण गड
मुहदो-मे सटे परम्पर,
ते ह उन के जचर म।

छायाएँ जत्र कँपती तन पर
लगता दोना माम ते रहे,
या आपस में चुपके मे
फुमफुसा रहे कुछ।

पङ्क्तुएँ आनी
पर उनमे
कोइ भी परिवतन
नही दिग्गड पडता।

कोयल गाती,
गरद पूर्णिमा भाती,
फाल्गुन की उमद बयार
वन में मौरभ विगगानी—

उन पर तनिक प्रभाव न पडता,
कभी न दिल ही उडर मचरता,—
रक्त दीडना दूर रहा
—मत्त गिराआ के भीतर।

हा, गर्मी में
उड़ गइ कुछ देर के लिए
वहा ठहरता थक कर क्षण भर।

मावन भादो मे
अलप्रता
कुछ काड सी जम जाती
खुरदुरे उदन पर।

शेष सनातन जीवन उनका
गुह्य मौन में बदी रहता।

आज अचानक
एक जगली फूल
फोड उनकी दरार की
साहस कर उनके मीने मे फूट
निरल आया लो, बाहर।

निज विस्फारित चरित दष्टि से
देम रहा वह
यमज अनमने पापाणा को
सोए तदाकार तद्रा में।

प्रतनु बत पर
नाच रहा वह भद्र पवन में—
निज उर का उल्लाम
धिरन उन पर उडेलने।

दोना मित्र
स्वय भी कुछ विम्वय विमूढ-ने

निर्विकार नयनो मे
देख रहे उसका मुख ।

मन ही मन
ज्यो मोच रहे हो—
हाय विधाता,
पत्थर उर में
फूल खिलाना था क्या तुमको ।

समाधान

गमाघात गया गभव भा क मर पर?—
जत्र रि प्रदत्ता निमित्त विन्त जीवन तो!

वाह्य परिस्थितिया पर अलपित जा-जीया,
छिडा विगत में मूत-आगत में मघपण,—
म्याभातिर अत्र आर्यिक मामाजिर परिवता!—
म्यग प्रतीक्षा रत—रह करे घरा पर विवरण!

गमाघात गभव है जव भी मा ते स्तर पर
यदि प्रमुद्ध मा निर कर में लें भू गामन को!

या फिर कटु मघपण, रण, त्रिनाश भी सभव,
दो दह शिबिरा में विभवत मप्रति बल बभव,
पर विश्वास मुझे, न वनम डाएगा मानव —
विन्त मभ्यता का समस्त जा दारण परिभव!

आस्था इन्तर पर मुझको,—उससे सब सभव,
वही बदल सनता वहिरतर जीवन मन को,—
काल मष्टि का साक्षी—प्रगति विवास प्रवतक,
इश्वर गर्भित जानो उससे गान्वत-क्षण को!

पखडियाँ

फूट फूट है।
 ये केवल पखडिया कोमल,
 नहीं पुष्प का सा श्री मौष्ठव,—
 रग गघ रज के मुखे दल।

जियर गड स्वर्गिक म्वर सगति
 रहा न वह अत सयोजन,
 अब न पूणता के ये दपण,
 पृथक् पृथक् जीवन क्षण निष्फळ।

मगरम कोप नहीं अत्र अतर,
 अनिमिष दृष्टि न छूती अवर,
 कहा बुलाता अत्र मलयानिल?
 वतच्युत, धायल अतम्ल।

मधुपा मे न अधर रस चुवित,
 मामा मे न ममीरण सगभित,
 केसर अलक न हिम जल गुफित,
 तार तार गोभा वा अल।

अब ये फूल न बन पाएँगी,
 मिट्टी में बर मिल जाएँगी,—
 पखडिया से फूल न बनते,
 फूलों के ही पसडि-करतल।

फिर भी ये हो सकती साथ
 मधुर प्रतीक्षा में रत अपलक,
 नव मधु पथ में पलक पावडे
 विद्या,—फूल बन सकती अविक्ल।
 ये प्रसून पखडिया कोमल।

एक सत्

कवि के मन को जिम प्रहार छूता जग जीवन
 वह उसमें सगति भर स्वर-त्रिम्वित कर देता,
 गब्दा को वह मोप जगत् की व्यापक पीडा
 अपने मन की गपन व्यथा सहन कर लेता।

हृदय शिराओ में बहता जो जीवन गोजित
 उसको सासों आ जा शोधित करती रहती,
 भाव-व्यथा प्रेरणा-किरण पा गीत-म्यत्र की
 लोकोत्तर सुख वन जन जन के मन मे बहती।

केन्द्र परिधि दोनो ही अविक्ल अग वक्त के,
 आस्था केन्द्र, परिधि जग जीवन मानव मन की,
 वहिभ्रात गो जाए नही जगत् मर में नर
 आवश्यकता उमको आत्मिक अवलवन की।

अमृत मोन रम-आत्मा, जिमकी अक्षय धारा
 जीवन सघपण में भरती नव मजीवन,
 जग प्रिय हो, जन प्रिय हो, भू जीवन भी प्रिय हो
 सब से प्रियतर हो आत्मा वा सत् चित् आनन।

मखे, एक ही स्वर में गाता अब मेग मन,
 नितिल म्परा वा स्वर जो, नितिल स्वरो वा आगय,
 स्वग मत्य मगीत मोत झवृत जिम स्वर में,
 जिमने जिना जगन् जीवन दारण भय मगाय।

आत्म धुरी

छाटी मिट्टी त लट्ट मी धरती
 ताचा करती
 दिगि वे करतल में नित,
 आत्म सय की परिश्रमा करती।'

देता करता म उसना धावन
 ध्यामन् गस्य स्मित,
 देता करता भाव प्रवण मन
 मागर सा आदारित।

दया करता रजत किरीट
 हिमालय से शिखरा का
 देखा करता
 जघनार मे भरे
 अचतन प्राण गह्वरा को।

मिट्टी के लट्टू सी धरती
 अक गणित के क्षुद्र त्रिदु मी
 पर अपने मे गहन सिधु सी,
 उसना भी रे अपना जीवन
 विधि जिसका करता मचालन।

वृष्टि अवपण
 झझा उल्का
 भूमि कप आ
 रक्त जस्थि नित करते मथन,—

अपने उर में
 कोटि चगचर
 जग जग उवर
 करती धारण।

वह तटस्थ हो इन सबसे—

लट्टू सी नाचा करती नित
 अपनी ही गति में—

बँध

भमा की स्वर सगति में।

देम मुझे भय भय से

जजर कातर,

नत्यपरा घरती दिग् हृषित

गस्य हरित आचल सँभाल कर

बहती—

जग जीवन धारा अनादि मे बहती।

तुमना यदि अपना जीवन दे

कुमुमित्त जग को करना

औरो का दुख हगना—

आत्म धुरी म रहो सहज स्थिन,

जग जीवन को भी

अपने मे बगे गमत्रित,—

तभी जगत् को तुम यत्किंचित
अपनी उर-निधि दे पाओगे।—

अपने जीवन में भी हमने
साधकता पाओगे।

जात्मच्युत हो
अग जग से निगले जाकर तुम
निश्चय मन में पछताओगे।

भाव मूर्य होने पश्चित्त
 त रचना प्रति जीवन अर्पित,—
 मिटता जग त ग्या जासा
 उर जग्ग्य वा वनना दपण !

आन को अत्र वह अविदित क्षण
 छँट जाएँगे भव सशय धन,
 विश्व शित्तज पर दाखगा स्मित
 ज्योत्तिमय भार्वा का आनन !

आत्म दर्प

मेरी रचना चुभती कुछ का
 सूक्ष्म काम वे करती अपना
 अमदिग्ध अब मेरा अंतर
 एक सत्य स्वर मुझको जपना!

मुझे छेड़ते जब, बशी सा
 गा उठता मेरा तमय मन,
 विश्व विसर्गति में नव सर्गति
 भरता म—जग के प्रति चेतन!

सजन कम म रोज न सकता
 वह मेरे स्वभाव का दपण
 म हँसता—जब कहते सुनता
 लिए हुए म उनका आसन!

शत्रु मित्र का हो स्पधा वश
 बनता नर अपना ही भक्षक,
 विमुख प्रेम के होता जो जन
 उसना इश्वर ही रे रक्षक!

साक्ष्य सत्य का पाना जिसको
 उसको होना पडता अपित,
 मूख सत्य को पा भी सकता
 किन्तु नहीं पा सकता गर्वित!

वर दृष्टि को सीधा भी ता
 टेढ़ा ही दिखता सत्र जग में,
 वह अपने ही से टकराती
 राडे भले न भी हा मग में।

अह दप मद का प्रक्षेपण
 नही मनुजता का शुभ लक्षण,
 क्षुद्र अहता मदा चाहती
 उहद त्रिम्ब दिग्गलाए दपण।

मत्य कथन का रिक्त दप ही
 पग पग करता मिथ्या भाषण,
 मौम्य, विनम्र, उदार चरित का
 मानव मन करता अभिवादन।

विद्यत् युग

आज अचानक
 त्रिजली चली गइ जब
 मुक्षको
 शरण मोमप्रती की लेनी पडी
 विवग हो!

तवी ली का
 स्वर्णम सौम्य प्रनाश भर गया
 चुपके मन में।
 स्वप्ना का ससार सहज
 साकार हो उठा नीरव क्षण में।

मुग्ध शलभ का प्रेम,
 दग्ध जीवन आकाशा,
 आत्म समपण,
 नाच उठा आखा के मम्मूख
 मत्यु शयन को उमुख।
 प्रेम त्याग ही का हो दपण।

सहज शीलमय
 मानवीय सी ग्नी मुये ली,—
 वनक विरण मडल ने

म उमन सा रहा सोचता—
 क्या भाती दुपली पतली ली
 विजली की जगमग फुहार में—
 स्त्री भी नत मुप
 खड़ी मामने,
 राज रता भी
 वपित तन मन
 स्नेह मने।

क्या विजली के
 दिन प्रास्त
 व्यापक प्रकाश से
 श्रेष्ठ मामप्रती
 या दीपगिया हो सकती?

भू मानव की पथ दर्शन
 बन सकती जग में?
 काटा के भू जीवन मग में?

नहीं, नहीं,—

यह मोह मात्र
 अभ्यासी मन का—
 जपता रहा स्ति का मनका।

विद्युत का हीरक प्रनाग ही
 ज्योति दूत जन-भावी जग का,
 रही सम्यता का भी प्रतिनिधि,
 आत्म प्रसुद्ध प्रतीक
 महत् वैज्ञानिक युग का!

दीपक का युग गया।
 मोह उसका स्वाभाविक
 पर, विवेक करता न समथन
 दीप शिखा का,—

शयन कथ म
 कपित वक्ष, विनत सिर
 शाभा द वह अव भी!

त्रिद्युत विरणा मे दीपित अत्र
 सम्य जगत की निशा—
 वही अघ तम का मुग घाती,
 स्पश मात्र से उसके
 अग जग में उजियाली होनी!—

यत्र शिराआ में वहता अत्र
 उमना अति गति शाणित —
 पार लगाना निमिर मिथु में
 जन जीवन का चाहित!

प्राण गति ही प्रतिनिधि विद्युत
 द्रत ग द्रुत,
 वह मिटा मरगी नून निगा?
 वह स्थर गति
 क्या मानयता का
 मया मरगी नयी निगा?
 मुने नहीं मर

महापद हागी न भौतिक विराग में—
 मनुष्य मारा जा मरगा
 —पात मर—
 नामय ताता क प्रताग में!

स्त्री

मुझको लोहे का तार बनाया लपटा ने
 तुमको शकार बनाया मेरे अंतर की,
 मैं ममत्व नहीं पाता था अपनी मायकता
 तुम देह सहज घर लाए भाव मचर स्वर की।

म वाच न पाया तुम्हें पूण स्वर-मगति में,
 मेरी अक्षमता,—मन मुझमें कहता निश्चय,
 वकार मान तुम रही हृदय की चिर अमृत,
 उन पाइ नहीं प्रणय प्रतिमा शोभा-समय।

मगीत नहीं फटा, उर को कर रम विभोर,
 स्वर रहा समाया प्राणों ही में भाव-मीन,
 गूजता रहा कलियों को घेर हृदय-मधुकर
 चुन पाया मग्न नहीं उनमें प्रेयसी कौन।

श्री गोभा लतिना तुम, मुझको अस्पृश्य रही,
 बगी की रम-अवयव मामल ग्य भी कोमल,
 नर भाय स्य घर छूनी स्वप्ना के उर को
 हो उठने प्राण जग्य स्या पाकर चक्षु।

तुम वाद्य मधुर होती—मन के तारा को छू
 म अपनी लय में उन्हें वाद्य लेता सुखमय,
 कल्पना स्वप्न भी होती, परिचित म उनमें
 प्राणों से कर लेता उनका अक्षय परिणय।

तुम मलय अनिल सी जा, रोमांचित कर जाती
 सासा की सौरभ से छू आकुल अतस्तल,
 ज्योत्स्ना सी छिपकर स्वप्ना में नहला जाती
 फहरा सुपमा की शीतल लपटा का अचल।

सुंदर स्त्री भी ह जग में, मन पुलकित रहता,
 घेरे रहती स्मृति छायाएँ उर को अनुक्षण,
 तुम सजन हृष के पल खोल गाती चुपके
 भावी के श्री सुख स्वप्नों से भर जाता मन।

अपित जीवन

सघ जाता जत्र तार हृदय का
 रम तमय हो
 गाने लगते प्राण स्वय ही
 नीरख स्वर में।

जग जीवन के कोलाहल को
 लाघ मौन में
 सूक्ष्म स्वप्न-झकार
 फूट पडती अतर में।

काल भुक्त से हो उठते क्षण
 नभ मा विस्तृत राग-रुद्ध मन,
 हार विजय मी
 विजय हार मी
 लगती जग जीवन-सागर में।

दूर न कुछ भी ग्यना मग में,
 निवट मभी वे म अत्र जग में,
 मन आने में डूब
 तैरता निभय
 सुग दुख के सागर में।

जाम्था में पा नर मजीवन
 श्रद्धा के पथ पर चरते क्षण,
 अर्पित मन जीवन ते हित
 जय भेद त कुछ
 बाहर भीतर में।

आएँ आएँ बिना चराचर
 फूटा-मे मुखडे ले सुदर—

जग के जन मन में

सोया भी

रहता मन अपने ही घर में।

सुख दुःख उर म जाते जाते
 धूपछाह दोना ही भाते,—
 म हूँ मुसी

तुम्हारे नाते

विसमे क्या मानू अतर म।

जीवन उल्लास

चिड़िया गाती मधु कलरव भर
छाया गाती कप कॅप निस्वर,
रवि किरणें ज्योति स्पर्शों से
गाती मन को छूकर।

सभी वस्तुएँ गाती निश्चय,
क्या तुमको सुन होता विस्मय?
मत्र जग मे कहने को आकुल
क्यो रस आतुर अतर।

ममर करते रहते तरुदल,
गघ अनिल फिरती स्मृति चचल,
गूढ सृजन उल्लास सिहरता
सत्रके उर में धर् धर्।

आओ, हम तुम भी मिल गाएँ,
अपने मन के भेद भुलाएँ,
पथर् रहें हम, एक साथ भी,
प्रेम प्रतीक चराचर।

मुचे मीन नीलिमा टरानी,
ज्योत्स्ना स्वप्ना में नहानी,
म मत्र मे ही परिचिन जग में—
एक मत्य रे मा म्रर।

सृजन दायित्व

कोयल जब गाती वसत मे
 नया फूल या
 खिल उठता उपवन में—
 विश्व प्रवृत्ति तब
 सजनोत्सास
 प्रकट करती उस क्षण में।

बलाकार माहित्यकार का
 क्या दायित्व भला हो सकता
 टममे सुदर?—
 गाभा की अगुलि से छूकर
 वह मगीत पिरोता जन भ मन में।

सोल परिस्थिनिया क वचन
 वह रम भक्त चेतना करता तत्क्षण,
 अतिश्रम कर युग की मीमाएँ
 अतिश्रम कर जग जीवन।

वह मोदय प्रसाग प्रम
 जानद गर ने द्वार गार कर
 आत्मा मे माशान् कराता
 निगिल धुदनाआ म उपर
 मुग दुग ने गार तर।

सहज बोध से उमेपिन वह
 तक वृद्धि के क्षितिज लाघ
 उडता वाणी के राजहस सा
 छू चैतय दिगतर—

मानव आत्मा
 भूजीवन को लाकर
 नित्य निवृत्तर!

और कौन दायित्व लादता
 जग उसके कधा पर?—
 मनुष्यत्व का प्रतिनिधि बन
 देता ममग्र वह दृष्टि विश्वको,

राजनीति या अधशास्त्र
 या सामाजिकता में भी
 नयी प्रेरणाएँ भर!

कोकिल जब गाती मधुवन में,
 नया फूल या
 खिलता घग्गी के आगन में—
 स्रष्टा तव रम मग्न
 निर्गल दायित्व मुस्त हो,
 गान्धत को वाँधता
 मृज्जन के क्षण में,—
 भू जीवन में,
 मन में !

भविष्य वाणी

म छाया में बठा उस दिन
 धरती पर कुछ आडी तिरछी
 रेखाएँ अँगुली से या ही खींच रहा था—

और मोचता सा कुछ मन में
 खींच खींच में आगे चपरे खींच रहा था ।

इतने में काना में महत्मा
 नपुर की ध्वनि पटी मनोहर—
 जोखें खोज, सामने खेपा
 एक किनारी को जाने श्रीमदर ।

जब जगदित, गीत बजाए
 रक्तिम जानन, महज खजाए
 ध्वज नण इति भागी पहन
 अगा में पटा रे गन्ने—

उठ गए तारे मेरे निराले
 तार धर तार में —

भौंटा में मरेन
 मन्त्र ध्वनि मन्त्र अघर में! —

कहती हो,
 बाँवों तो पड़ित, मेरा करतल ।
 सत्य हस्त रेखा विद्या
 या केवल वाग्दल ?

सुनती हूँ,
 तुम मामुद्रिक हो,
 मत्र सिद्ध हो,
 अपने मित्रा मे प्रसिद्ध हो ।

म हूँ धरती,
 सूर्यदेव की
 परिक्रमा नित करती ।

मेरा भाग्य पढो,
 भविष्य वतलाओ मेरा,—
 दुगम विपम परिस्थितियो ने
 मझको घेरा ।

मन को वातर स्वर ने छुआ,
 हृदय विद्रवित हुआ ।
 वयमधि मे शोभित प्रिय तन,
 खिच जाते थे महज नयन मन ।

फूलों का करतल
 म थामे रहा देर तक,
 उमको निगूना पराया मैंने
 घटा अपत्न ।

जन-भू जीवन का विवास
 नाचा आया मैं

विश्व सभ्यता का इतिहास

हृदय में छाया,

उड़ स्मृति के पाखो में !

गोला, मैं तुम पर हूँ माहित ! —

कहा, हटो, मत छेड़ो मुझको, —

गालो मे द्रुत दौड़ा शोणित !

म बोला, यो मत सकुचाओ,

तुम हो जनगण मन की प्यारी,

प्राणो की प्रिय शोभा प्रतिमा,

मुग्ध किशोरी नारी !

म करतल पड़ चुका ध्यान से,

सुनो, भविष्य बतताता हूँ

निज गुह्य ज्ञान से !

जभी तीन रेखाएँ

कर में निकली केवल,

जन प्राण मन की द्योतक

जन जीवन सबल !

आयु बुद्धि भावना नाम भी

इनके निश्चय

भू जीवन

इनके ही चिर मुग्न दुख का

प्रतिनिधय !

एक और रेखा

प्रकोष्ठ से ऊपर उठकर

जभी मय अंगुली टांगी—

दीध ऊचकर !

भू जीवन को कर
शाश्वत सीदय प्रेममय
कीर्ति तुम्हें देगी—
आनद, प्रकाश अनामय ।

अत स्थित होगी तुम
अधिक वहिर्मुख विस्तृत,
यही तुम्हारी भाग्य रेखा
वतलाती निश्चित ।

साथक होगी
सूय देव की प्रिय परिन्मा,
स्वग शिखर चुवी होगी
भू मानवता की महिमा।

वाग्ने प्रमुदित—
वाह्य क्षितिज भर छुआ
अभी मानव ने निश्चित
अतरिक्ष युग कर
भू मन मे नव उद्घाटित ।

तुम कहते,
अन शिखरा पर भी विचरण कर
स्वग विभव वरसाएगा
भू पर प्रनुद्ध नर ।
घयवाद करती मैं नत सिर
आऊँगी तुममे मिलने फिर ।

मधु पखडियाँ

जो गिर गइ मधु पखडियाँ
 वे जन पाएँगी पूरा न अत्र
 प्रथ वत मूत्र मे—मात्र मे
 हँस हँस पाएँगी झूरा न अत्र ।

मौदय-वत्त म मयोपित
 वे दग न करेगी आरपित,
 निज उर-मौरभ भूनभ मे भर
 हो पाएँगी न स्वय उपवृत्त ।

मधुपात्र न वन सक्ते करतल,
 अलि वा क्या देगी आमत्रण ?
 उड जाएँगे प्रिय रूप रग,
 कुम्हलाएगा कृमि सा रज तन ।

स्वर सगति से विच्छिन्न विवृत्त
 अस्तित्व किसे लगता शोभन,
 मनुलन चित्त जब खो देता
 प्रतिकूल उसे लगता जीवन ।

फिर भी वे चाहें तो साथव
 हा पतित उपेक्षित जीवन क्षण—
 वन पत्र पावडे विछे प्रणत,
 जीवन नव मधु को कर अण ।

सूर्य बोध

म जय छोटा था, विशोर,
 तन देस प्रकृति मुख
 अनजाने

हो उठता था मुख में त्रिभोर ।

आगन से, तरु गिखरा पर से
 मन उडता चुपके अवर में,
 म मौन शांति में खो जाता
 तिर रहस नीलिमा के मर मे ।

कोमल पसो या म्वप्न नीड
 प्रिय नील शूय था मन का घर ।

त्रिस्मन हो जाता बाह्य विश्व
 नामों हयो का वस्तु जगत—
 मन मुक्त नील में होता लय,
 वह भी करता मेरा स्वागत ।

म मूल प्रकृति से शक्ति खीचता
 नील शांति मे प्राण भीचता,—

मेरे मन का सूय
 देवता बाह्य सूय को
 अपत्य लोचन ।—

सूक्ष्म बोध

मैं त्राव न पाऊँगा तुमको
 शब्दा की वेणी कर गुफित,
 साकार नहीं कर पाऊँगा
 अतर के तारा मे शकृत ।

शत भावा विम्बा मे न अभी
 अँट पाएगी मुपमा अतुलित,
 छवि विन्दु ममा पाएगा क्या
 जग जीवन सागर में विस्तत ?

फट पडता वादल अचल जब
 तुम विद्युत गति करती नतन,
 वरगट लेती रस ऊर्जा जब
 गिरि वन भू में जगता कपन ।

भ्रू इमित भर से गृह्य व्यथा
 गीता में हा उठती छदित,
 मधु स्पश मात्र मे मम क्या
 पा जाती स्वर लय गति अवधित ।

सौंदर्य अनावृत हो जाए
 यदि कला करे तुमको अकित,
 यह दूब लाज में तुममें ही
 हो जाए निस्तल अतर्हित ।

तुम उर के वातायन पर आ
 दिखला जाओ गुठित जानन,
 वृत्तकाय सहज इतने ही में
 हो जाएगा जग का जीवन ।

तुम हो, इसका ही सूक्ष्म बोध
 बनता उर का अक्षय सबल,
 भ जीवन सघषण में भी
 वजती रहती अश्रुत पायल ।

म्मति भी न जान पाती अब तो
 हा उठता अतस्तल तमय,
 उर नम्र आत्म रक्षा के हित
 तुमको अर्पित—इमसे निभय ।

जयनाद

शुभ्र गग्न वन गड
 बोध के हाथों में अब
 मेरी वीणा
 दुसह मात्किरु मयु मे भरी ।

वह न मधुर भावा की मुरली
 अधर ध्वास-मधु, पीने वाली
 प्राणों के वासों की हरी ।—

हृदय चीर कर फूट निकलती
 उमसे रहस वेदना गहरी,
 क्या न नाद मुन जाग उठेगी
 मोट गोर चेतना पहरी ।

मेघा में विद्युत् भी पागल
 यथा ज्वाल प्राणों मे लहरी—
 जो शब्द ध्वनि, हृदय गोर कर
 अपनी वात जगत् मे बह री ।

प्रतिष्पन्नित हा या पना मे
 अत्र ता प्रमात्र तू गह री,
 या अरूल, जीवन मागर की
 अतल गहनताआ में बह री ।

राघ पय के अत्राघा वा
 जग ती शुद्ध चुनीनी सह री,
 देयें जन, युग धरस डह पर
 विजय वैजयती नम पहरी ।

नम्र

तण का क्या कर लेगी आँधी ?
 दहगती जाएगी कुठ क्षण
 फुकारेगी पटक घुघ फण,
 गहरे मूल जमाए पादप
 बह जाएँगे ! कापेगा वन !
 सत्र का मुँह भर देगी आँधी !

मौ मौ अहि लोटेंगे भू पर
 रस्मी से बट बट दिग् घूसर,
 मयित्त होंगे फेन जिह्व जल,
 उबड़ जाँय सभव उड भूवर,
 अवर-पय तर लेगी आधी !

रघु तृण युन जाएगा सम्मुख
 पथ पर त्रिछ जाने वो उमुख,
 भयवग नहीं, शीलवश लज्जित,
 शक्ति दप प्रति फेर सौम्य मुख,—
 उसना क्या पर लेगी आँधी !

भय सक्कट में रह वह अगत,
 हग-भरा, पहिरे मे उन्नत,
 गक्ति प्रदगन मे अपराजित
 रहा नम्र, आत्मन्थित, उद्यत,—
 यही बह गए इसा गाधी !

यग अत्र उर निविरा में गटिन,
 अस्त्र गम्भ करने में अजित
 गकिन गकिन मे रिजित न हागो,
 मानरीय ब्रह्मान्ध अपरिचित ।
 निनके ने तत्र टिम्मा वांघी ।

आकाक्षा

मुझे ताजगी,
 नव जीवन उरलास चाहिए,
 जड यथाथ की टहनी मे
 चेतन स्वप्नो का वास चाहिए ।

अतिक्रम करता रहता नित
 यथाथ अपने को,
 मूर्तिमान करता
 अमन मन के सपने को ।

मुझे स्फूर्ति,
 मन प्राणो में अभिलाष चाहिए—
 विन्व ह्लास विघटन में
 नया विक्राम चाहिए ।

कौन मृत्य है, कौन स्वप्न
 पीछे जानोगे,
 क्या यथाथ आदश
 मन ही पहचानोगे ।

मुझे सत्य गिन गुदर,
 ज्ञानि, प्रराग चाहिए
 पतंगर बन में हँसना
 नर मधुमाम चाहिए !

भाग द्वाग में
 मुझे त्यागमय भाग चाहिए,
 काय व्यस्तता में
 ध्यानस्थित याग चाहिए !

यग ने भानिन पिजड़े म
 बंदी जग का मन—
 मुझे चाहिए
 आध्यात्मिक नव राक जागरण !

भगुर जग में
 इश्वर का जविवास चाहिए
 शाश्वत का सित स्पश,
 शक्ति, विश्वास चाहिए !

प्रतीक

वसे रग उभरते ये
 आसो के सम्मुख—
 ग्गो के थप्पे
 प्रतीक भर
 दग लते हर,—
 कही न इनके
 आँसु कान गुप्त ।
 केवल हँसते रग
 हृदय को करते मोहित ।

कौन चेतना
 अभिव्यक्त करती अपने को ।
 म वसे समझू
 रहस्यमय
 मन के इस जाग्रत मपने को ।
 इन रगो में शब्द न अथ
 भाव भर केवट—
 ये करते मन प्राण उल्लसित ।

गोज रहा म
 यह प्रताप की निरण
 मोहती जो मेरा मन,—
 रगा में जा बहती प्रतिक्षण
 मुझसे सकेता में गोपन
 उर की बातें अद्वित ।

कश्मीर

घरा स्वर्ग कश्मीर, प्रकृति का मद्य मौ-दर्यस्थल,
 इन्द्रनील नभ, मरुक्त हरित धरित्री शस्य श्यामल ।
 गाता सर सरिता झरनो में गिरि का गीत-मुखर जल,
 पृथ के रगो की घाटी, -हँसता मुक्ता दिगच्चर ।

केशर की रोमाचित त्रेती अपलक खती लोचन,
 मौसा में बहता अनाम गधा से गुंथा समीरण ।
 पहलगाँव, गुठमग मोहते मुग्ध यात्रिया के मन,
 निश्चय ही उन्मुक्त प्रकृति का यह प्रिय क्रीडा प्रागण ।

राहो में सा घरा उठाए नील नयन अवर को,
 ध्यानावस्थित खते निजन गिरि तन्मय अतर को ।
 शोभा से दिग विस्मिन हृदय नमन वग्ता दृश्य को,
 मन देना चिक्काउ उरु वृमि-मे दरिद्र हृत्तर को ।

मुने स्मरण जाती फिर ग्राम्या प्रकृति राम यह जीवन
 यहा अकेला मात्र ही रे अभिगापित, जीवन-मृत ।
 न विकारय युग गभव, नर जीवन मून्धो से प्रेरित
 घरा-म्वर्ग के योग्य यहा नव मानयता हो विक्रमित ।

सौन्दर्य स्पर्श

सौन्दर्य लोक का वामी मन
 गुंथा करता शोभा वेणी
 शोभा आत्मा की सार सुधा,
 शोभा भू-स्वर्ग सलभ श्रेणी!

जो घम न दशन दे सकता
 कवि देता वह रस सत्य अमर,
 चतय अमृत, प्राणा का मधु
 शब्दों के दोना में भर भर!

पहुँचाता शोभा का प्रकाश
 वह पण कुटी, घर आगन में,
 उर का पावक वितरण करता
 रस जजुलि भर जन के मन में!

निज अमर-स्वरा के स्पर्शा से
 भरता जग-जीवन के कटु व्रण,
 दीपित करता अरसाद तमस
 प्रेरणा किरण से छू नूतन!

मृगिक मपद् ने खोल रद्ध
 वह जन भू उर के वानायन
 भावो के शोणित मे करता
 जडता के शव को नव चेतन!

मौदय साधना कृच्छ्र महत्
 जीवन के विष को बना अमृत,
 सह घृणा दश, दे सहज प्रेम,
 पशु को करना होता सम्भृत!

सयुक्त

सगो नम गता गत ताते
 य कत तात गत तर न्याम
 य गय तात तात—
 मरिगा का कत कत गाता कतता कत।

जा प्रति समीरण की गति में
 जा गाति तीत तन में निम—
 सम्निका जगत तह तप मरत
 यात्रिक मत तथ्या ता जगत।

प्राणा ता गागर तहृगता
 विसुत्पगी कत रजताज्वर
 पीआ रोआ त कूपा में
 गतित नन वरो हृदय में कत।

नन तमना नित जग जीवा की
 तरती मन प्राणा को मोहित,
 जड जग का मुख भी सजन दावित
 नन भावा मे वरती अवित।

इस नाम रूप जग मे रहना
 उठ नाम रूप से ऊपर नित
 अत स्थित रखता मानव को
 आनद केद्र से सयोजित।

तण तहओ के जग के मुझको
 मदेश नित्य करते प्रेरित
 खग मग मुझमे बातें करते,
 सब के आशय मे उर परिचित।

मगीत एक ही व्याप्त मौन
 तण तर जीवो के अतर में
 रस्तुएँ सभी पाती निम्बर
 अभिव्यक्ति उसी अविदित मर में।

वासी पड सकता जगत् नही
 मुख सजन चेतना का विम्बित,
 मद्य स्पुट मा लगता प्रतिवण
 अविरत शाश्वत ने प्रति अर्पित।

उर केद्र-वक्ति से भाव-युक्त
 वहु का भी करता आस्वादन,
 रहु में खोए मानव मन को
 दुप्पर होना जीवन यापन।

आत्म मोह

विष पी, युग सागर वा विष पी,
जीवन के प्यासे मन,
शस्य श्यामला मुग्धा वृष्टि से
तुझे सीचने मरकण!

अतनभ की उच्च वायुआ की
श्वासा पी पावन
विष प्रभाव से मूर्छित मन म
भर फिर न सजीवन!

सुरमा सा मुह फाड व्यक्तित
जो करते निज विज्ञापन
मसक रूप घर, मोह सिन्धु तर
गोपदवत तू अनुक्षण!

आत्म मोह उड, दत्य रूप जब
घरता दारण भीषण
निज जवगुण भी गुण लगते तन
पर के गुण भी हूपण!

गाल चजा नर अपने ही से
 होता गव-पराजित,
 अपने को गौरव देने में
 खोता गौग्न अर्जित!

यग लिप्सा भरमाती,
 कुटाएँ फट पडती बाहर,
 मुट्ठी जब तक चद तभी तक
 नर के हित श्रेयम्कर!

आत्मदप मे स्फीत
 उसे लगते जग में सब वामन,
 बाह बाह करते मुग्ध पर
 हँमते मन ही मन मग्न जन!

सुल पडता वस्त्रावृत
 खूसट हाट मास का पजर,
 रिक्त आत्मश्लाघा में लिपटा
 व्यग्न चित्र अपना नर!

भग्न अहता पीडित वीडिक
 स्नायु पिंड श्लथ केवल,
 अहभाव से जजर,
 बाहर मे भी भीतर दुर्वर!

दे यथाथ की सतत दुहाइ
 रोता वह जग वचक,
 अधकार का मौन उपासक
 वन प्रकाश का निन्दक!

नास्तिक बतला अपने को
 वनता आधुनिक निरतर,
 दकियानूसी आस्तिक भीतर
 पूजा करता पत्थर।

जटिल जगत, मानव स्वभाव
 उसमे भी जटिल असशय,
 सत-समद्व, विद्या विनम्र वन—
 जग जीवन प्रति सहृदय।

मेरी वीणा

मेरी वीणा भाव युद्ध का
 शख वन गइ मेरे कर में,
 मृदु शकार प्रबुद्ध नाद वन
 फूट रही जन भादन स्वर में।

मे क्या लिप्यता, नही जानता,
 बिना लिखे मानता नही मन,
 मुझे लाघ, आते जीवन में
 प्रेरित शोभा पत्र मृजन-क्षण।

मुझे देख उमेप रश्मि स्मित
 स्वय सहम जाता यथाथ जग,
 उमरों लगता, व्यथ गडाए
 वह जीवन के कदम मे पग।

ज्या असाध्य रोगी जी उठना
 पाकर रस ओपधि मजीवन
 मरणो-मुन सम्यता मागती
 मुझमे चित्तपत्नी नव - दशन।

यहिभ्रंति जग को देता म
 अत केन्द्र—ध्वत आलोकित,
 नयी दिशा देता चेतस को
 नये मूत्य मे कर अभिपेक्षित!

भले मकडा दादुर ध्वनिया मे
 मुखरित हो युग का आगन,
 मद्र मेघ गजन मुनवर ही
 भाव पल्लवित होता जन वन!

किसकी प्रतिछवि—नही जानता,
 मेरा मन नव युग का दपण,
 जन भू मानवता को मिलता
 इसमें विम्बित भावी आनन!

वह कोरा परिहास मान
 भगुर गुटघर्मी नव लेखन का,
 विना स्पश पाए शाश्वत का
 आचल पकड़े मिटते क्षण का!

विश्व ह्यास विघटन के यग मे
 अस्वीकृति ही उसको भाती,
 जग विकाम का पथ,
 मिटना ही इसमें विघटन की क्षण
 थाती!

मेरी वीणा
 जीवन रण का शख वन गइ
 मेरे कर में—
 मानव उर फिर रण क्षेत्र,
 गाता मन नव गीता के स्वर में!

म स्वतत्र चेता, युग वेत्ता,
 मृजन चेतना प्रेरित,
 नम निर्माण घरा पर चलता
 जीवन मन आदालित!

यह यथाथवादी युग
 हैमता म जिम पर मन हो मन—
 अथु स्वेद थ्रम का मघपण
 वतलाते दुबल जन!

तिलका ताड वना वे
 करते अह दप बिनापित
 जग का हो दायित्व अखिल
 उनके कथा पर स्थापित!

भव यथाथ आदश उभय
 जीवन द्रष्टा के रे कर
 दोना को सचालित करता
 वह उनमे रह उपर!

जग जीवन वा स्वप्न
 छटता जाता मन से प्रतिक्रमण
 क्वि ऋषि दष्टि सुपण अनशनन—
 जगत भोग रम साधन!

सत्य मये जीवन पदाथ में
 दिखलाए देता तव नूतन
 जत्र पद अथ ग्योलती तुम नत्र
 सुदम हृदय में भर सवेदन!

वहिजगत शत्रु, स्पश तुम्हारा पा
 जी उठना बन नव चेतन,
 मत्यु चिता लपटा में मुनना
 नव जीवन स्फुर्लिंग का स्पदन!

ओमा के उन में हँस उठने
मेरे अतमुग के मित क्षण,
त्रिजन निगा-पट में गुल पड़ने
तारा-मे मेरे दुग के त्रण।

निमित्त विश्व में लगता मुझरा
मेरी ही लघु मत्ता प्रमग्नि
दपण भर यह बाहर का जग
जिसमें म नग्नगिन्य प्रतिप्रिमित।

मेरी मवेदना चद्र घन
भू वा तम करती आलोकित
आकाशाएँ जुगनू सी उड
पथ खोजती नित्य अपरिचित।

तीथ स्नान म रागद्वेष की
ज्वाला में करता जीवन की,
अग्नि परीक्षा देता नित
आनोश बह्नि में तप जन मन की।

आत्म कथा मेरी मेघा के
दया विद्रवित उर में अकित,
युग समुद्र मथन से ये घन
उमड़े मनोगगन मे निश्चित।

मुझको रे प्रिय जन भू जीवन
जन मानवता होगी विकसित,
आत्मकथा का उपसहार
सम्बद आशाप्रद तुम्हें समर्पित।

सजन चेतना के विनाग ता
 जग चिर माथी दपण,
 भावा, बोत्रा, उथ्या वा
 चलता रहता सघपण।

इसमें डूत्रा, पात्र टपता
 जसे निज अभिनय में—
 दगा रहो तटस्थ मान ही—
 चुभे न गल हृदय में।

सत्य जगत जीवन निश्चय,
 भाद्वत विनास वा प्रागण,
 इश्वर प्रति आस्था यदि—
 जग जीवन वा करो समपण।

शख ध्वनि

मन के वन में जाग लगाती
 यह गभीर शख ध्वनि मेरी,
 युद्धोमुत्त हत जगत के लिए
 इसे न जन ममज्ञे रण भेरी।

वहाँ खो गया वस्तु जगत् के
 जगल में मानव—लगता दुःख,
 वाह्य के उजियाले तम में
 कहीं योजता वह अपना सुख।

वस्तु जगत में अनी ही
 जाभा भी छाया देख प्रतिफलित
 दौड रहा वह वस्तूरी मृग सा
 अपने ही से हो वचित।

मनुज मम्यता अनति दूर
 लेगी नव मोड—न मुनको मशय,
 घृणा द्वेष की नहीं,
 विश्व में दया क्षमा ही की होती जय।

सघषण के चक्रा को
 स्नेहावत स्नेह मे करना निश्चय,
 अपनी ही भीषणता से अब
 स्वय पराजित अणु बल का भय!

खोलो उर के द्वार मनुज,
 विस्तार वहा भुवनो का अगणित,
 चरण धरेगी मनुज सम्यता
 नयी भूमि पर अतर्दीपित!

जीवन का मुख सहज मवारो
 राग द्वेष रज मे उठ ऊपर—
 मनुष्यत्व का प्रतिनिधि हो वह,
 शिव मुदर मे शिव सुदरतर!

अश्रु म्वेद के मघषण को
 आत्म दप से दे नव गौरव
 स्वग न व्यथ वताओ उमको—
 अहम्मयता का जो रौरव!

प्यार करो धरती को निश्चय,
 कितु न तण्णा-नदम में सन,
 आदर दो जन भू जीवन को
 रह विशिष्टता में माघाण!

क्रांति युग

ग्रहिभ्रात मानव मन को
 निश्चय ही अतःकेन्द्र चाहिए,
 नभी मम्यता उठ पाएगी
 मस्कृति के सित मोपानो पर!
 आत्म मतुलन आ पाएगा
 विविध परिस्थितिया में जग क्री,
 मनुष्यत्व की परिधि बहिजग,
 केन्द्र प्रसुद्ध-हृदय के भीतर!

सामाजिकता बृहद् विम्ब
 पृथु-उदर जगत्-दपण में त्रिम्बित
 मनुज मत्य का,—आत्मा जिमकी
 मारभूत मित प्रतिनिधि निश्चित!
 सरल नहीं जत केन्द्रित होना
 जन साधारण के स्तर पर,
 त्रिजयी होनी आत्मबोध पर
 वहिर्मुखी जन-प्रकृति निरतर!

आज ध्वम हिंसा मघपण के
 समुद्र में रक्त स्नान कर
 जन मानवता नव ममत्व में
 नैघती, क्षुद्र विषमताएँ तर! —

आत्मनुष्ट अव मन सगठन
 गत युग के मानव का बबर,
 नयी एकता स्थापित कर्ता
 युग, समत्व की सुदृढ भित्ति पर!

महत् ऋति युग मनुज जगत
 होता आमूल चूल परिवर्तित,
 जीवन के स्तर पर अमृत
 आत्मा होगी गुणमत् प्रतिष्ठित!
 वस्तु जगत् भी मानव आत्मा ही का
 प्रतिविम्बित मुख दपण,
 भाव वस्तु या जड चेतन
 इश्वर के सृष्टि साध्य औ' साधन!

भारत भू

ऋषि रीतियो में पथगया
 जन भारत भू का जीवन
 रेती रा मागर।

ज्वार नही उठते प्राणो में
 जोभा के शक्ति मुख से प्रेरित,
 शक्ति न उर में, जीण पुरातन
 पद्धति के तट करे निमज्जित,—
 उब डूब करता दुःख मन
 भीतर ही भीतर उद्वेलित।

धर्म विधानो में जकडा
 जन भारत का मन
 पाप पुण्य भय मशय जजर।

विद्वित काग के ककाला के
 पद चिह्नो से तट रेखांकित,
 रिक्त मना, मृत सिन्धुवामा की
 जष दरारो में भू गडित,—
 शिक्षित नही, प्रबुद्ध नहीं नर
 गाम्भ्र पुराणा के गुण पडित,

सप्रदाय, प्राणा मे रञ्जित

एक गच्छ जीवन की जागा रगनी दुम्बर!

उत्तमान भारत का जीवन

हीन भावना मे उत्पीडित,

त्रिपुत्र विदेगा के वंश मे

गौडिक रग म्त्र जानकित,—

अपनी भाषा, अपनी मम्बृति

अपना सत्र कुछ यहा अवाछित—

वही मम्ब, भू आत्मा मे अनभिन,

मम्ब पश्चिम की कोरी अनुकृति, जनवर!

त्रिघटित हाता देश जाज,

गन सट भाग्य हत वालू का तट,

रय, त्रिपमता, हिमा उदती

रुद्ध हृदय के मानवीय पट

स्थापित-म्याथ ग्रमित जन नेता,—

सनता यह म कमी आहट?—

रक्त नाति क्या निकट गरजती?—

गाति! कचाए मत्य-नाम तप भू को इदर!

राजू

राजू छोटा सा था जब मेरे घर आया,
 दस पंद्रह दिन का हो सभव! बड़े प्यार में
 पागल पोमा मने उसको,—मच यह, उसने
 छीन लिया सा प्यार, बिना जाने ही, मुझमें!
 सभी जानते ह विल्ली का वच्चा कितना
 श्रीश्याप्रिय होता है! उसने मोह लिया था
 मय का मन अपने विचित्र मौखिक खेला से!
 आगन में चिड़िया की उच्छ्वती परछाई का
 पजा माग करता था वह, उमे पकडने!

गति का अद्भुत प्रेमी था वह! उसने आगे
 उंगली आप नचाएँ वह कौतुक में पागल,
 झपट हाथ पर उगली पजा में दबोच कर,
 उमे चवाता छोट तीगे दाग चुभा कर!
 कभी उल्टकर निपट पांव में जाना चपरे
 अपनी चपल प्रकृति में प्रेरित—
 मृगसो गया देख अजिर में!

एव धार उत पर मनजहनी तो गारर वह
 टेडा था, छिप सिडनी तो ऊंची मुडेर पर,
 पनी माज्नी गतिरा रे पत्ता मे आवत!
 उमे नही देखता अभी जय गरी देर ता
 म पुत्रागता राजू राजू, पुमी पुमी ती
 गार गार रट ग्या, (गडोमी हेसत मुप पर)।
 यह मुर म गाय तप उनीरे मर में—
 छा पर म हुत, म्याड म्याड तर,
 भिनय करन ग्या तूने रा जांग पर।

तेग अदमर पर म उठा वन ती पुगीं
 उमे उतारा तन्ता छन म' हरि आत
 हरि क्या तता!—गजू के भी ह अमम्य
 गीग प्रगग,—जा मय मरण ह।

ग्या तदि स्वातन था वह जा त मित्ता—
 जन्मारी में माया, भात्री ती गित्त में,
 धारी त तन्ता ती गरी त अर गित्त!—
 गभी मरें तत्तननग थी गरी गारा।

अगर गिलहरी चंचल उहरी जलु-जगत् की,
पिल्ली चटुल भवर—जा कुछ न मिले तो अपनी
पठ पफ्ट कर, मय नाच सकती पागल सी।

चूह को उह जिम कौशल ने मारा करता
जमे उसकी छलबल भरी चटोर प्रवृत्ति का
बोत्र महज हो जाता। बड़ी कुशलता दिखाने
विधि ने तिली की रचना की सत्र जीवा में।
उस पर अपनी मृष्टि-भला अवसित कर सारी।

धमी श्री भुक्तुमार लचीली देह उमे दी,
किननी सुदर चित्र तिली मो मुद्राओ में
सोने की प्रिय कला, म्वच्छतन रखने की रुचि,—
दूध मलाइ आदि व्यजनो का प्रेमी वह।

एक बार वह अर्ध रात्रि को चाने आया,
तीन बजे हागे, पद्रह फरवरी रही तब,
जाडे के दिन, मैंने रोल त्रिवाड, उसे
कमरे के अदर गोत्र गिलाया,
दूध पिलाया,—भोचा जत्र वह कुर्मी पर
जाकर मोणगा—बद कर दिए द्वार—बितु वह
बार बार गुर्त कर, अपना रोप प्रकट कर
पजे मे रोलने ग्या पट, म्याउ म्याउ कर।

माँत नाचती होगी उमरे मिर पर।—मैंने
जाने दिया उसे। वह उही स्वतंत्र प्रवृत्ति का
ढीठ बित्तु स्नेही बिल्ला था, ओ' पटोस में
उसकी बी समुगा बटी—उह बहु व्याहा, चाहा
बवारा था—गुह्य गात्र जीवन का प्रमी प्रेच मैं सा।

वह फिर तब मे अभी नही लाटा अपने घर।
 उइ दिना ता उमकी रही प्रतीक्षा सत्रको,
 इपर उपर गाजा भी—रही न दिया दियाइ।
 साग घर मूना हा गया प्रिना राजू के।

बटा युग लगता जब ऐम श्रीटा कुगल
 सुघर जीवत माथी को गाजर। जब भी मुखको
 लेटा अभी दियाइ देता वह उपनन में
 स्मति की आया मे त्रिम्बित हो। —मधुर स्वप्न भा
 जहा जहा यह माता छिपा लता कुजा मे

वहा वही उमकी छाया अब भी मँटराती,
 फूलो की देरी मुफेद। —जब कभी करण ध्वनि
 स्पष्ट सनाइ देती आगन से जाती सी,
 द्वार खोल म उमे गाजता—रहा गूजता
 वह अदृश्य स्वर। पर वह छ वर्षा का साथो
 प्याग राज चला सदा को गया रवग अप,
 मने छोडकर प्रिय स्मतियो के बटक वन मे।
 अब न कभी लौटेगा मूक सुघर स्नेही वह।

सकट

ज्याति मृत सी वृक्ष चेतना मनुज के भीतर,—
जिसे विरोधा के पवत का विकट सामना
करना पडता, इस विराट् जग में रहने को
सहने पडते उसे नर आघात अनेकों
जो पग पग मुह् वाए लेते उसे चुनीती।—
अधमार को घाना गढ नियति आमा की।

धीरज रगना ही विपत्ति मे मान महोपधि
जीवन की मय स्थितियों मे विद्रोह न समझ
गार की विपदाएँ होती कभी न दुजय,
यदि अन स्थित हो चेतस, स्थिर निमल हो मति।
सकट मभी निवारण हो सकत यत्ना मे
यदि तटस्थ रह, समझ सके हम उनका कारण।

भीतर का सकट ही वास्तव मे सकट है,
विचलित हो यदि नित्त, तस्त उर, मति में हो भ्रम,
डिग जाए यदि आस्था, अपने प्रति हो मशय,
जीवन के प्रति रहे प्रेम उत्साह न मन में,—

ऐसी स्थिति मे शत्रु ही रक्षा कर सकता,—
वह ग्ना वगना भी है, यदि उसे पुनार।

मनोभाव

मा राए फर बिन्दु उग आए ताँट'
 प्रीज ठीक थ घरती भी अच्छी उबर थी
 पर जना आता गकिनयाँ ऐसी हागी
 जा निश्चेतन मे जगार दूपिन कर दनी
 चना रे पाले पोमे मगल विधान को'

म अर क्या काँटे बाँडे? ता क्या उनमे भी
 पूरा को फमलें उग पाएँगी? नही नही —
 म पूरा कोही बाँडेगा जग के मग में। —

फरा मे काँटे नही उगे। काँटा के भी
 मूल रहे हागे भरज में, जो पूरा से
 पहिले उग आए, पूरा सँग सीचे जावर'
 पूरा में भी काँटे होते, दृढ़ जगत यह'

पर, म पूरा को ही प्रोऊँगा भू उर में,
 काँटो के विरवा की जहें उग्राड फेंक कर
 पूरा रे पाँवडे विद्याऊँगा पलका-से,
 मानव भापी का पथ निष्कटक हो जिससे,—

विचर सको तुम भू पर नव स्वप्नो के पग घर'

प्यार

मुझसे चिढ़ते मुहब्—रुटाता रहता हूँ म
भले बुरे पर प्यार। न मुझको बोध तनिक भी
भरे बुरे का, पाप पुण्य का। मैं मन ही मन
विचलित हो उठता उनकी फटकारों सुन कर।

मोचा करता, क्या कीचड़ में प्यार फेंक कर
दुरूपयोग या अपचय करता मैं अनजाने
दिय प्रेम का? मुझको लगता मुक्त प्यार का
अमृत स्पश पा, कीचड़ अपना गदापन
पहचान सकेगा, आर ग्राह बनने का यत्न
करेगा, निधि पा अतुल प्रेम की।

और प्रेम तो
अकरुण है ही। वह पन्ज उन, गदुपयोग कर
तुच्छ पक रा, नया मूल्य दे सकेगा उसे।

निश्चय, कभी अपव्यय होता नहीं प्रेम का,
वह अयय है, सदा रुटाने से बरता है।

सतुलन

प्रियर गद । नीता भाभा
एत त उभा तत रर न्य मे
जाय्था वा प्रर प्रराग
रग गया हृदय त भय गाय म।
अध नया वा भाग रेंगता
अतर म क्षण क्षण वर राता
उगने पण म मणि—प्रराग
उसाता जाने क्या मा ता भाता।
नया वस्तु जानर आज
अप्रतरित हा रहा दृष्टिय पथ पर
जा वर्जित तो स्वीकृत करता
बता विरूप विवृत ता सुदर।
मूय त निमित्त मत्पत्रान जन,
मूय हीनता ही जमय धा,
मुक्ति इगी म,—पाप पुण्य
सापेश—व्यथ सब नतिय बधा।

नयी सम्यता जम ले रही
 आज धरा के जन प्रागण में,
 निरल माँद मे पग
 निद्वन्द्व विचरता जग जीवन कानन मे।

सामाजिकता मे क्या करना ?
 तुष्ट व्यक्ति मान्य चाहिए,
 अगर थाहना ही हो ता
 अचेतन गहर आप चाहिए।

अश मत्य मव मे ह—
 मन के तम को होना जीवन पानन,
 आज एव नु, भोग त्याग में
 पग पग पर चाहिए सतुन्न।

सार्थकता

गिर जगत् मामूढित जीवन रा
 उठता जा भ पर—
 गना गिर पर म
 गति लय में भरता न चेतन स्वर!
 पीरा पतथर उन में धरता
 रमा रगता मुदर,
 मता रग निज जादि रूप में
 निराय पूण दिगजर!

सूना नीरा गगन,
 ताने में मित्रता मन रो मुग्ध,
 भाव रोव म परे कला रा
 शोभा में गुठित मुग्ध!
 गूगा गहरा को म गीत
 मनाता धरनि इगित कर,
 मन की अपलन आग्या में
 अक्षय शोभा चित्रित कर!
 अहरार का ममता मणि फण
 जहि न करे उर दगित,
 साथकता मानव जीवन की
 तुमरो हो चिर अर्पित!

निर्घोष

मजन दगर,

नर मर ध्वनिया मे
 गर्भित हो जे जन भू ता मन,
 नये गोत्र के अकुर फूटें
 जगें गधिर में नव मयेदन ।

युग ममद्र मधन मे निवृत्त
 काठकूट जो भीषण मादन—
 उमकी ममि में दुःखा जेवनी
 मृजन जमत म ररता वपण ।

मेने कृष्ण को

सुधा गरल को मित्र

जना नर मम मजीधन,

मृत्यु मेघ को दुह-दुह म

परमाता जन-भू पर नव जीवा ।

अमास्या मे आज पराजित

अमुर गक्तिर मलय तिचय,

दया धमा ही मानवीय रर—

मनुज मनुज के प्रति हो महदय ।

युद्ध युद्ध से नहीं थमेंगे,
 घणा न मानव जीवन दशन,
 दृष्टिा देगी शाति न जग को—
 प्रेम स्पश ही भरता उर-त्रण।

सत श्री गरा समद्वि—असत का
 सह निमम युग-भगु पद लाछन,
 मत सगत्प शवित सामूहिक
 युग पथ सपट करे निवारण।

पुरस्कार

पुरस्कार भगवान् दिलाए नही किसी को।
मित्र गनु हो जाते इसमें। और प्रशसक
रट्टु आलोचक बन, कृतित्व के साथ आपके
लघु चरित्र को बना दूषणों का पहाड़ पृथु
आत्म तुष्टि पात है, तिल का ताड़ गडा कर।

पष्ठ भूमि गढ नयी आपकी छिद्र भरी
दुबलताओं की, राग द्वेष की। भले वाट दे
आप उमे (वह बँट भी गया, सभी जानेगे)।
पर स्वर्ग आक्रोश कभी मिट सकता इससे।

मुझे चुनौती मिलती "वे भी चाहें तो सब
पुरस्कार पदविया स्वयं भी हथिया सकते—
किंतु खुगामद करना उन्हें पसंद नहीं है।
पुरस्कार का दुरपयोग भर खलता उनको—
कौन याच कर सकता, कौन बडा सजब हूँ?
पुरस्कार या क्या लेखक महान् हो जाता?"

मैं उनका अनुमोदन करता—पुरस्कार से
लेखक कभी महान् नहीं हो सकता निश्चित,
पर कृतित्व ही शान्दत कीर्ति स्तम्भश्रष्टा का।
पुरस्कार से इनको भी भगवान् बचाए
इनको भी मुनना न पड़े यह सब जीरा से।

मायाजाल

मेरे अपने बीच
 खोसली झूठा वा तुम
 जाल तानती रही प्रतिक्षण,
 गुप्त हो रहा अब
 वह गोभा वा मम्मोहन
 क्षीण तुम्हारे प्रति
 जाकपण!

क्षण भगुर मुग
 मभव अनजाने ही तुम भी
 हा जाआ अतर मे आजक,
 उठ जाए महमा मुग मे
 माया वा चीना जकक!

त्रय मभी हा झूटे छकक
 जिना मय के
 रहे न आम्या रा भी मकक!

पूर्ण बोध

मने अपनी
 क्षुद्र चेतना का लघु आगन
 चाड-पाठ कर दिया म्रच्छतर,
 गत स्मृतिया के ढूह मिटा कर,
 जीण शीण को
 जीवन दे फिर नूतन!

अत्र वह दिग् दपण भा विस्तृत,
 नित्यिठ विश्व
 जिसम प्रतिविम्बित!

आगन नही, खेत वह उवर,
 घास पात तृण छील
 गीन खर कटक दुष्कर,—

नव शोभा के शस्य
 बहा मैने रोपे स्मित,—
 स्वर्णिम लपटें फूट रही
 जिनमे सौंदर्य प्ररोहित!

खेत नही, वह बीज भी स्वय,
 ऊँव प्राण अँकुओ मे पुलकित
 नव चेतय क्षेत्र वर विक्रमित—

नव भात्रो बोधा ही
 मजरियो में अब वह मुतुलित,—
 प्रेम, तुम्हार प्रति चिर अर्पित,
 लोच भावना रजित,
 अत मुरभित!

अविच्छिन्न

क्यो हँसते रहते फूल सदा
 कोइ रहस्य क्या उन्हें चात?
 चुप्पी साधे आकाश,
 उसे कहनी वह रँगी गढ़ वात?

चंचल फिरता वाताम
 समा पाती न हृदय में भाव गध,
 गाता मरिता जल वह बल बल
 पथ तिरना जिना तरी अनत!

जलता रहता पावक अहर्ह
 ये लगी दीप्त उर में प्रियेप,
 पवत अत त्रेद्रित
 नीरव मर में दते गापन मँतेग!

म भी मयुक्त निमित्त जग मे,
 जनात इय मे जानाति

कर्तव्य

जीना अपने ही मे
 एक महान् धम है,
 जीने का हो सदुपयोग
 यह मनुज धम है।

अपने ही में रहना
 एक प्रबुद्ध कला है,
 जग के संग रहने में
 मव का सहज भला है।

स्त्री का प्यार मिले
 जमा के पुण्य चाहिए,
 मव जीवन को
 प्रेम मित्रु में डूव चाहिए।

पानी उन वर
 मत नीरस उपदेश दीजिए,
 लास-वम भव-मत्य,
 प्रयम मरम कीजिए!

मनोव्यथा

दुखी रहता म मन ही मन!
 ऐसी भारत भू में जमा
 जहा अतल दारिद्र्य सिंधु में
 ह्वा जन का जीवन!
 जहा व्यथ रे आत्मवोध
 व्यथ ही ऊध्व आरोहण!

लहरा से उठ कर
 असंग्य कर मुझे बुलाते,
 गजन भरते उदर
 न दाना पानी पाते!
 फेनो - से सकल्प
 तटा से टकरात,
 खिसियाते!

मजन क्या करे?
 याति ज्वार में
 उमड झुड जन
 लांघ रूढ जीवन तट
 मन की भीमा डुगा न पागे!

पद मद कामी वीमे नेता
 विन्द त्रासदी के अभिनेता! —
 अर भी नही लोक मन चेता! —
 मूयो के विप्लव में
 कवि हो
 नम्रुति वोहित कमे खेता?

चिन्तातुर रूता मेरा मन
 एमे युग में जमा हूँ मैं—

जन भू पर छाया जव विघटन
 ह्रास, घ्वस, भीतिर सघपण,
 राजनीति की प्याली में जव
 डूब रहे आदम चिरतन!

भोगवाद के पीछे पागल
 जव चरित्र से हीन सम्य जन!

सोच मोच कहता मेरा मन,—

व्यथ संय, गमत्राम्त्र, बाहु बल,
 राष्ट्र की कटु स्पर्धा निष्फत्र,—
 महाप्रति का युग वहिरतर,

घर्य चाहिए,
 दृष्टि, मनाप्रत्र!

आदागित चेतना - मिथु,
 चाहिए वाप गैग
 आगिन मवल!

प्रतिक्रिया

लो, स्वतंत्र अब दश! —
 युगा का क्षुद्र दमित मन
 ग्राह्य उमट रहा अब प्रतिक्षण,
 करता कट जालोचन,
 प्रत्यालोचन!

हीन भावना ग्रस्त
 द्वेष से दग्ध
 असंस्कृत लेखन
 वमन कर रहा अब सँडाघ
 निज जपचेतन की गापन! —
 बुद्धि हीनता का कर नग्न प्रदर्शन,
 प्रतिभा गिलरा का कर
 नित अबमूत्यन!

छिद्रावेपी मूपर
 छिपे जहताजा के अब जिला में
 बंद किला में—

सग्रह किए तुच्छ उच्छिष्ट
 जगत जीवन का,
 कुठिन मन का
 अपनेपन का!

वे कुट्ट गाली बक्ते
जिसे नहीं लिख पाते—
घणा उगल जो लिखो
उमसे नहीं अघाते।

वेदा रे, तुरुसी युग रे
दादुर वटु - ध्वनि कर
अव न मधुर ख भर
मन के कानो में गाते। —

अहकार की घन वर्षा में
पेट फुला गज दभी मेढक
दपं मुखर
बकदा म्वर में टरनिं।

क्षुद्र नदी नाले
टेढी मेढी गति में वह
युग के कूटे बचरे में
भर भर इतराते।

कला बोध, युग मलय निखिल
दुग्ध से भरी
यौन भावना की घाटी में गिर
गो जाते।

मेरी जाम्बा
अपने पर ही उठनी दृष्टर,
और आत्म विदग्ध प्रवृत्तर,
लम्बभ्रष्ट उन धनुधरो के
ना कुट्टा गर!

निश्चय, प्रतिभा का विद्युत वृण
 मेरे भीतर होगा मणिफण,
 जिसके स्पश मान से दशित
 विचलित हो उठते
 प्रतिस्पर्धी खा वृण!

आत्म विजित
 शत जिह्वाया स
 वट्टता का विप करते वपण!

वियतनाम

शूरवीरता के अप्रतिम निदर्शन निश्चय,
पोरुप तेज प्रतीक, घाय तुम वियतनाम जन।
निज स्वतंत्रता की बेदी पर हूँस हूँकर तुम
करते सब आवालवद्ध निर्भीक ममपण।

जयायो आनामन मे ले लोहा प्रतिक्षण
अग्नि वज्र मकरन शक्ति मे प्रेरित होकर
तुमने, जन स्वातंत्र्य चेतना के मरक्षक,
रोद दिया साम्राज्यवाद का गण मद दुस्तर।

ठहर न सरना अत्याचारी सत्य युद्ध में
जन भू का इतिहास युगा मे हमारा दण,
सत्य जयी होता, अजेय जन शक्ति स्रोत जो
जा मन प्राणा में भग्ता यह जीवन नूतन।

अग्नि गिवा सी तेजस्विनी स्त्रिया वरी का
मान नग रग्नी—विद्युत् अस्ति सी वह बाहर,
साधर श्रोत्र हुआ उनमे, जन भू पथ पावन,
चडी फिर प्रमुरा की वधि जेती भर गप्पर।

पाणा मे भी प्रिय स्वतन्त्रता वियतनाम ता—
 हो ची मिह प्रेरणा भर गए शोणित वण में—
 मत्सुजय मदेश समर में वन उर-सवल
 प्रति हृत्स्पदन के मँग गाता जन गण मा में।

भ इतिहास नये यग म ररता प्रवेश जब
 आ अजेय नर मिह, तुम्ही उसके निमाता,
 अब शक्ति का आरा मिल गई तुम्हें वरण कर,
 रक्त पूत भय मृत्यु क्षीत्र, कृतकाम विप्राता।

जीवन के मात्राण मत्या को अतिश्रम कर
 महाध्वंस के क्षण भ जन मन हो अतिचेतन,
 महानाश के चरण तोड नव मृजन कर गद्दा,
 वितर्कित जग में अमत्त, कठ में कर त्रिप धारण।

लेनिन के प्रति

एक शता के बाद आज भी लगता मन को
महापुरुष अवतरित हुए, तुम लोक धरा पर,
जन गण की दारिद्र्य दुःख दामता निशा की
रर निरकुश युग युग ही जेडिया तोउने!

रुद्ध प्रगति, स्तम्भित ये युग इतिहास के चरण
प्रस्तर यग की रूढि रीतियों में पथराए,—
जादोलित कर लोक चेतना सागर तुमन
मज्जित ही गन मीमाँ जन-भक्ति ज्वार में।

दिग्गवापी भ रूप मदस तुम बिचरे भू पर
छिनभित कर जीण आततायी जन-वधन—
नया मोट दे यन मम्यता को जन युग ही।

शक्तिया से पद दलित क्षुधित, नापित असुर्य जन
वग सम्पता के खँडहर में जगकर सहमा
जीवन-मुक्त लगे बढ़ने पा नया दिगा पथ
नव आशा-नाशाओ के स्वप्ना से प्रेरित।

रक्तोज्वल मानव गरिमा के नये भूय से
उदित हुए तुम बिध्व भित्तिय पर महिमा मडित,
जन भू के जाने-जाने का अधकार हर
दिक् प्रसन्न जीवन प्रभात का जन प्राणण में।

धय महामानव, भू पर चरितार्थ कर गए
वैज्ञानिक युग का तुम—निखिल भक्ति का सचय,
यशो की मपद्द वितरित कर जन मंगल हित।

नवोभेष उर में, नयनो में सृजन स्पन्द नव,
अगणित कर-पद सामूहिक श्रम उल उभेषित
बढते जन सस्वृति का नव प्रासाद सँजोने।

देख रहा म अनतिदूर, भावी आगन में
घरा-स्वग कल्पना जनै माकार हो रही—
भू मानवता निकट आ रही अधिक तुम्हारे।

लोक क्रांति के दूत, जानता सूक्ष्म दृष्टि से
तुम गाधी एक ही सत्य के शुभ्र सस्वरण,—
देह प्राण मन के मानव को उपवृत्त करने
आए तुम, जन-भू कृताथ अब वहि सगठित।

मनुज हृदय को उन्नत करने आए गाधी
आत्मा का दे मौम्य स्पश अतमुख मन को—
तुम से लेकर महत साध्य, गाधी से साधन
निखिल विश्व जीवन सयोजित हा जन भ पर
वहिरतर वैभव प्रतिनिधि वन (आज विपत्ती
सय शक्ति गिविग में खडित) मनुष्यत्व का
हृदय सत्य-स्पदित हो निमम यात्रिक्तता ने
लौह अस्थिपात्र में जकडा जय-काम मे।
मानवीय गात्र हा प्राप्त तगत जीवन को।

महाध्वम को आगना मे मक्त घरा जन
विश्व क्रांति के मिन महवदल पर दिग विस्तृत
लोक माम्य मंग विश्व ऐक्य का करें प्रतिष्ठित—
मनुज प्रेम के जालिगन में राघ घरा गो।
तुम्हें नमन करता जन, लेनिन, भारत का कवि—
आविर्भाव तुम्हारा था अनियाय जगत क्ति।

राजकमल द्वारा प्रकाशित पतजी की अन्य कृतिया

लोकायतन (सक्षिप्त)	८ ००
लोकायतन	२५ ००
*अभिषक्ति	३ ००
चिदम्बरा	१५ ००
रश्मिबन्ध	२ ५०
भतिमा	४ ००
स्वणधूलि	५ ००
कला और बूढा चाँद	६ ५०
युगवाणी	४ ००
पल्लव	६ ००
पल्लविनी	११ ००
शिल्पी	४ ००
पौ फटने के पहिले	८ ००
किरण बीणा	८ ००
*पुरुषोत्तम राम	३ ५०
पुरुषोत्तम राम (पैपरबक)	३ ००
*सयोजिता	१० ००
*साठ घण एक रेखाकन	३ ००

*तारंगिकत पुस्तकें अनुपलब्ध हैं ।